सती मैया का चौरा

भाग 2

भैरव प्रसाद गुप्त

सती मैया का चौरा

भाग 2

उस धार्मिक समाज के प्रति मुन्नी में एक विद्रोह भर उठा था, जिसका मन्त्री कैलास था, और कैलास का सबसे बड़ा गुण यह था कि उसका बाप धनी था। आर्य नवयुवक सभा की वाद-विवाद-प्रतियोगिता में वह हर साल हिस्सा लेता था और हमेशा कैलास के विरोध में बोलता था और उसे पछाड़े बिना न छोड़ता था। आम जलसे में कैलास की बोलने की हिम्मत न थी, लेकिन मुन्नी ज़रूर उठकर बोलने को समय माँगता था। वह तो मन्ने से यह कहकर ही जाता था कि बिना बोले मैं रहूँगा नहीं। तुम दूर से खड़े होकर सुनना।

एक बार एक भारी गलेवाले उपदेशक पूर्व-जन्म के कर्म पर पूरे दो घण्टे बोलते रहे। सभा पर इनके भाषण का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि सब वाह-वाह कर उठे। अन्त में वे बोले-आज आपकी जो अवस्था है, वह-सब आपके पूर्व जन्म के कर्मों का फलाफल है। आप ग़रीब हैं, अन्धे हैं, लूले हैं, लंगड़े हैं अथवा अन्य किसी व्याधि अथवा दुरवस्था से पीड़ित हैं और चाहते हैं कि अगले जन्म में आपको इनसे मुक्ति मिले, तो इस जन्म में आप अच्छे कर्म करें!

मुन्नी के आग ही तो लग गयी। वह बीच सभा में उठ खड़ा हुआ। तालियों की गड़गड़ाहट अभी पूरी न हुई थी कि लोगों की दृष्टि उस पर जा पड़ी। वह चिल्लाकर बोला-सभापतिजी, इस विषय पर बोलने के लिए मुझे पाँच मिनट दें।

उन महोपदेशक ने उसकी ओर वैसे ही देखा, जैसे कोई पहलवान अखाड़े में किसी उछलते-कूदते बच्चे की ओर देखता है। सभापति ने उनकी ओर देखकर आँखों-ही-आँखों में उनकी अनुमति चाही, तो वे बोले-हाँ, हाँ, बोलने दीजिए।

वह बोलना शुरू ही करनेवाला था कि महोपदेशक उठ खड़े हुए और बोले-बालक, तू व्याख्यान क्या देगा? बस, मेरे एक प्रश्न का तू उत्तर दे दे तो हम समझें?

मुन्नी ने दबंगई से कहा-प्रश्न बाद में कीजिएगा, पहले मुझे बोल लेने दीजिए!

लोग अचरज से उसकी ओर देख रहे थे।

महोपदेशक बोले-तू बोलेगा क्या? मेरे प्रश्न का तू उत्तर-भर दे दे, मैं मान लूँगा।

-अच्छा तो पूछिए!-क्षोभ से नथुने फडक़ाता मुन्नी बोला। सभा में सन्नाटा छा गया।

महोपदेशक ने आँखें निकालकर कहा-कोई शिशु अन्धा क्यों पैदा होता है?-और वे अकडक़र बैठ गये।

सभा के दिल की धडक़न एक क्षण को रुक गयी। सभी मुन्नी की ओर देखने लगे। ऐसा विकट प्रश्न! बेचारा लडक़ा क्या जवाब देगा?

मुन्नी ने गम्भीर होकर एक बार चारों ओर देखा। सभापति की बग़ल में कुर्सी पर बैठा मन्त्री कैलास मुस्करा रहा था। मुन्नी ने एक बार दाँत पीसे और फिर बोला-आर्य महोपदेशक महोदय! आपके इस प्रश्न पर मैं वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डालना चाहता था, लेकिन आपको मेरा बोलना पसन्द नहीं, इसलिए आपके प्रश्न के उत्तर में मैं भी आपसे और इस सभा से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। आप ध्यान से सुनें! किसान खेत में लाखों बीज डालता है। बाद में देखता है कि कुछ बीज सड़ गये हैं, कुछ कमज़ोर पौधे निकले हैं और कुछ बहुत अच्छे निकले हैं। ऐसा क्यों? ...

सभा में ताली की गड़गड़ाहट गूँज उठी। महोपदेशक उठकर कुछ कहना ही चाहते थे कि मुन्नी बोला-मुझे सवाल पूरा कर लेने दीजिए, क्या ऐसा इसलिए होता है कि कुछ बीजों के पूर्व जन्म के कर्म बुरे थे और कुछ के मद्धिम और कुछ के अच्छे?

सभा में हल्ला मच गया। गँवारों के ज़ेहन में भी बात सीधे उतर गयी। लगातार कई मिनट तक तालियाँ पिटती रहीं। मुन्नी ने हाथ जोडक़र महोपदेशक को सिर झुकाया और बोला-लोगों को बुद्धू बनाकर आप अपनी फ़ीस और भत्ता सीधा करें, प्रणाम!-और मंच से कूदकर अँधेरे में ग़ायब हो गया।

दूर अँधेरे में मन्ने खड़ा उसका इन्तज़ार कर रहा था। दोनों लिपटकर इतना हँसे कि उनके पेट में बल पड़ गये।

सो, मुन्नी को टोकनेवाला गाँव में कोई न था। गाँव ने मौन रूप से उसका धर्म-विद्रोह, अर्थात मुसलमान लडक़े से उसकी मित्रता और उसके साथ रहना-सहना स्वीकार कर लिया था।

ठीक यही हाल मन्ने का भी उसके समाज में था। और अब वे दोनों निर्भय ही नहीं, दबंग होकर एक साथ रहते थे।

मन्ने ने कहा-तुम भी चलोगे?

मुन्नी ने कहा-नहीं, लेकिन तुम जल्दी लौटना।

बिलरा के साथ चलते हुए मन्ने ने कहा-अभी आ जाऊँगा। तुम यहीं ठहरो।

अब्बा पलंग पर सामने पानदान रखे बैठे थे। कमरे के अन्दर के दरवाज़े पर बोरा बिछाकर एक लडक़ी बैठी थी। उसके चेहरे पर एक ऐसी चमक थी, जो अन्तर की शक्ति, साहस और निर्भयता का पता देती है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से मर्दानगी टपकती थी। वह साफ़, धुले हुए कपड़े पहने थी। उसकी साड़ी की किनारी चौड़ी और चटक रंगों की थी। उसके बाल अच्छी तरह सँवारे हुए थे और बाल के ज़रा ही नीचे बायीं भौंह के ऊपर एक आध इंच का कटने का निशान था।

उस लडक़ी ने उठकर मन्ने को सलाम किया, तो सहसा मन्ने से कोई जवाब देते न बना। वह ठमककर उसकी ओर देखता रह गया।

अब्बा ने कहा-इसका जवाब दो! यह कैलसिया है।

यह कैलसिया है! मन्ने की समझ में न आया कि वह उसे क्या जवाब दे। बौखलाहट में उसने दाहिना हाथ माथे के पास ले जाकर कह दिया-सलाम!

-तुम्हारे स्कूल से एक कार्ड आया है! तुम्हारा नतीजा है!-कहकर उन्होंने सिरहाने लिपटे बिस्तरे के नीचे से एक कार्ड निकालकर उसे थमा दिया।

अस्थिर होकर, बड़ी उत्सुकता से मन्ने ने कार्ड लेकर देखा और ख़ुश होकर बोला-अब्बा, मैं पास हो गया!

-तब तो, मियाँजी, मिठाई खिलाइए!-चहककर कैलसिया ने कहा।

-अभी लो!-मन्ने के अब्बा ने बाहर खड़े आदमी को पुकारा।

-अभी हलवाई के यहाँ से उसी के बर्त्तन में एक सेर मिठाई लाओ।

-अजी, मैंने तो योंही...

-योंही क्या,-मन्ने के अब्बा ने कैलसिया की बात काटकर कहा-तुमने बिल्कुल ठीक बात कही है!

-अब्बा, मैं मुन्नी को भी बुला लाऊँ?-मन्ने ने हर्ष-विह्वल स्वर में कहा।

-हाँ-हाँ, ज़रूर!

मन्ने दौड़ता हुआ पोखरे के खण्ड पर पहुँचा और कार्ड मुन्नी के हाथ में थमाता हुआ बोला-नतीजा आया है! देखो! ...और चलो, अब्बा ने मिठाई मँगायी है। उन्होंने तुम्हें बुलाया है।

देखकर मुन्नी ख़ुश होकर बोला-तुम्हारी पोज़ीशन तो बहुत अच्छी आयी है। पता नहीं, मेरा क्या हुआ। मेरा कार्ड भी घर पर आया होगा। तुम चलो, मैं अपना कार्ड देखकर आता हूँ।

-अभी डाक थोड़ी बँटी होगी! अब्बा तो आदमी भेजकर रोज़ अपनी डाक मँगाते हैं। चलो डाकख़ाने, वहीं तुम्हारा कार्ड होगा।-मन्ने ने कहा।

दोनों डाकख़ाने पहुँचे, तो वहाँ कैलास भी अपना कार्ड लिये खड़ा था।

मुन्नी ने चौकी पर कागज़ फैलाये बैठे हुए मुंशी से उत्सुकता-भरे स्वर में कहा-मेरा कार्ड दीजिए!

मुंशी ने उत्सुकता का मज़ा लेते हुए कहा-पहले मिठाई खिलाओ, फिर कार्ड लो!

-अरे लाइए, मुंशीजी!-मुन्नी उसकी क़लम पकड़ते हुए बोला-मिठाई तो आप कैलास से खाइए!

-वो तो खिलायँगे ही, गोकि उन्हें तरक्क़ी ही मिली है। लेकिन तुमने तो बाज़ी मारी है। तुम पर हमारा हक़ पहले पहुँचता है!-हँसते हुए मुंशी ने कहा।

-दीजिए भी!-मुन्नी की उत्सुकता आकुलता से भर उठी-क्यों परेशान करते हैं!

-तो वादा ही करो,-मुंशी ने क़लम खींचते हुए कहा।

-हाँ, भाई,-कैलास बोला-तुम्हें तो गाँव-भर को मिठाई खिलानी चाहिए!

-तुम्हारे जैसा धन्ना सेठ का बेटा मैं होता, तो ज़रूर गाँव-भर को खिलाता!

-मुन्नी ताव खाकर बोला-ख़ैर, मुंशीजी, मैं आपको मिठाई ज़रूर खिलाऊँगा! लाइए अब!

-तो वादा पक्का रहा न?

-मैं झुठ नहीं बोलता, लाइए!

मुंशी ने बस्ते के नीचे से चिठ्ठियाँ निकालीं और उनमें से ढूँढक़र मुन्नी का कार्ड बढ़ाया।

लपककर मुन्नी ने कार्ड लिया, तो दूर खड़ा मन्ने भी उसके पास आ गया। दोनों देखते ही उछल पड़े। कैलास ओंठ दाँतों-तले दबाये उन्हें देख रहा था।

-हो न अव्वल? मुबारक! मेरी मिठाई न भूलना!-मुंशी बोला।

लेकिन उन दोनों का अब वहाँ ठहरना मुश्किल हो रहा था। बिना कोई जवाब दिये मुन्नी वहाँ से भाग खड़ा हुआ और उसके पीछे-पीछे मन्ने भी। रास्ते में दोनों ने अपने कार्डों का मिलान किया।

-गणित में तुम्हें कम नम्बर मिले हैं,-मुन्नी ने कहा।

-हाँ, गणित में मैं मुसलमान हूँ। अरिथमेटिक में मेरा बस नहीं चलता। ख़ैरियत कहो कि ज्योमेट्री बचा लेती है।-मन्ने बोला।

-पहले तो ऐसा नहीं था? बात यह है कि तुम अपना बहुत-सा समय साहित्य-अध्ययन में व्यतीत कर देते हो!-और मुन्नी ठहाका मारकर हँसा।

मन्ने पहले तो चौंका, पर फिर वह भी ज़ोर से हँस उठा। सहसा उसे मिडिल स्कूल की एक घटना याद आ गयी। टीचरों की मीटिंग हो रही थी। उनके दर्जे के टीचर ने विद्यार्थियों से कहा था कि आप लोग बाहर मैदान में जाकर पढिय़े। लेकिन लडक़े बाहर जाकर खेलने-कूदने और शोर मचाने लगे। तब मन्ने ने अपने टीचर से शिकायत की-पण्डितजी, विद्यार्थी अपना मूल्यवान समय व्यर्थ व्यतीत कर रहे हैं!-सुनकर टीचर उसका मुँह ताकने लगे। जब क्लास लगी तो मुसलमान होते हुए भी इतनी शुद्ध हिन्दी बोलने के कारण उसकी प्रशंसा करते हुए टीचर ने यह बात सारी क्लास को सुनाई। और तब से लडक़े यही वाक्य बोलकर उसको चिढ़ाने लगे।

-उसका तो चस्का पड़ गया है,-वह बोला-अरिथमेटिक में मन ही नहीं लगता। अब तो मनाता हूँ, कब इससे पिण्ड छूटे। ख़ैर, तुम्हारे अव्वल आने की मुझे बेहद खुशी है!-मन्ने ने कहा-देखा, कैलास कैसे देख रहा था!

-उसका कार्ड तो हमने देखा नहीं,-मुन्नी बोला।

-वो दिखाता ही नहीं,-मन्ने बोला-मुंशीजी तो कह रहे थे, उसे तरक्क़ी मिली है।

-प्राइमरी स्कूल के बड़े पण्डितजी की याद है?

-छोड़ो, यार!

खण्ड में पहुँचे तो बिलरा हाथ में फूल के कटोरे में मिठाई लिये खड़ा था। मुन्नी ने अब्बा को सलाम किया। मन्ने के अब्बा दुआ देकर बोले-बैठिए आप लोग!

उनके पलंग के सामने एक खटिया इसी बीच बिछा दी गयी थी। मुन्नी उस पर बैठने में झिझका, तो मन्ने भी उसका मुँह देखता ठिठका रहा। ज़मींदार के सामने कोई बनिया चारपाई पर न बैठता था। इसके पहले इतने वर्षों के बीच भी कभी मुन्नी उनके पास न आया था। आज भी शायद वह न आता, लेकिन ख़ुशी की रौ में यों ही वह मन्ने के साथ चला आया था। चले आने के बाद ही उसे अनुभव हुआ कि यह उसने क्या किया? दरअसल वह इस बात से डरता था कि कहीं मन्ने के अब्बा ने उसे पीढ़ी पर बैठने के लिए कह दिया, जैसा कि वह बनियों को कहते हैं (छोटी जाति के लोग तो उनके सामने फ़र्श पर ही बैठते हैं) तो क्या होगा, मुन्नी अपने स्वाभिमान की रक्षा उस समय कैसे करेगा? इसी कारण वह उनके पास जान-बूझकर ही कभी न आता था। इसके पहले केवल एक बार वह उनके पास जाने को मजबूर हुआ था। उसे वह घटना आज भी अच्छी तरह याद है, हमेशा याद रहेगी। ...

शाम को तालाब के किनारे मैदान में वे फ़ुटबाल खेल रहे थे। एक बार उसका पैर ख़ाली पड़ गया और वह धड़ाम से गिर पड़ा। उठने के थोड़ी देर बाद ही उसके दाहिने पैर का अँगूठा दर्द करने लगा, लेकिन उसने किसी को कुछ बताया नहीं। घर आकर माई से कहा, तो उसने हल्दी-चूना गर्म करके उस पर कई बार छोपा। लेकिन रात-भर दर्द होता रहा। गर्म-गर्म हल्दी से थोड़ा आराम मिलता, लेकिन ठण्डी होते ही दर्द फिर शुरू हो जाता। सुबह को माई ने कहा-कोई नस इधर-उधर हो गयी है, जाकर किसी से बैठा लाओ।

गाँव में दो ही बैठानेवाले थे। एक गर्जन मेहतर और दूसरे मन्ने के अब्बा। लोग कहते थे, गर्जन बड़े हरहट्टपन से बैठाता है, दर्द की परवाह नहीं करता। उसके यहाँ जाने की हिम्मत उसकी न पड़ी और मन्ने के अब्बा के यहाँ जाने का साहस तो बहुत कम लोगों में था, क्योंकि वह ज़मींदार थे। लेकिन सुना था कि वह बहुत मुलायमियत से बैठाते हैं, दर्द नहीं होता। उसने सोचा, मन्ने से कहे और उसके साथ ही उसके अब्बा के पास चले। फिर जाने क्या हुआ कि वह अकेले ही चल पड़ा।

सुबह की सफ़ेदी छायी हुई थी, अभी किरण न फूटी थी। पहुँचा, तो खण्ड का दरवाज़ा बन्द था। वह ज़रा दूर ही सहन में खड़े हो दरवाज़ा खुलने का इन्तज़ार करने लगा।

पास की घेराई से उनका चरवाहा हाथ में घड़े लेकर निकला, तो मुन्नी ने पूछा-मियाँ साहब देर से उठते हैं क्या?

-नहीं, बहुत सवेरे उठते हैं। इबादत कर रहे होंगे। तुम्हें का काम है?

पैर का अँगूठा दिखाता हुआ वह बोला-बैठवाना है।

उसने ज़रा अचरज से उसकी ओर देखा, फिर शायद तुरन्त ही उसे ख़याल आ गया कि वह मन्ने बाबू का दोस्त है, तब बोला-थोड़ी देर रुक जाओ, अभी दरवज्जा खोलकर वे टहलने निकलेंगे।

वह खड़ा-खड़ा मन-ही-मन घबराता रहा कि जाने क्या हो। दरवाज़ा खुला तो वह सचमुच बहुत घबरा गया, मुँह से बकार ही न फूटा, आँखें संकोच से ज़मीन में गड़ गयीं।

उन्होंने ही कहा-आदाब अर्ज़ है! कहिए, आज सूरज पच्छिम में निकलेगा क्या?

वह तो हक्का-बक्का हो उठा। सिर उठाकर देखना भी मुश्किल।

-अरे वाह! यह क्या बात है? आइए अन्दर!-उन्होंने हँसते हुए कहा, लेकिन वह टस-से-मस न हुआ। वैसे ही धरती को घूरता रहा।

आप इतना शर्माते हैं, मुझे मालूम न था। ख़ैर, आप हमारे यहाँ आये, मुझे बेहद ख़ुशी हुई। अब फ़रमाइए, मैं आपकी क्या ख़िदमत कर सकता हूँ?

लडख़ड़ाते स्वर में उसने कहा-मेरे पाँव का अँगूठा....

-ओह, तो यह बात है?-उन्होंने व्यस्त होकर कहा-बैठिए, बैठ जाइए!

वह पैर आगे करके वहीं बैठ गया। उन्होंने बैठकर अँगूठे को अपने हाथ की एक अँगुली से धीरे-धीरे दबा-दबाकर देखते हुए कहा-कोई ख़ास बात नहीं है। आप ज़रा अच्छी तरह बैठ तो जाइए।

वह पाँव आगे फैलाकर चूतड़ पर बैठ गया।

-मेरी ओर देखिए,-अँगूठा पकडक़र उन्होंने कहा।

उसने सकुचाई और शर्माई हुई आँखें उठायीं, तो वे मुस्कराते हुए बोले-आप यहाँ आये, इसके लिए मैं आपका क़तई शुक्रगुज़ार नहीं...

वह बेबूझ की तरह देखता रहा। उसे इसका भी खयाल न रहा कि उनकी अँगुलियाँ उसके पैर के अँगूठे के साथ कौन-सा खेल खेल रही हैं।

वे कहते गये-आपके पास दस अँगुलियाँ हैं, लेकिन मैं शुक्रगुजार सिर्फ एक अँगुली का हूँ, इस अँगूठे का, जिसकी वजह से आप हमारे यहाँ आये, बाक़ी नौ का नहीं...

और जैसे मुन्नी की जान ही निकल गयी...अँगूठे में कहीं चट-से कुछ बोल उठा और ज़ोर से अँगूठा पकड़े वह चिल्ला उठे-बिलरा! बिलरा!

हाथों में कुहनी तक सानी लगाये उनका चरवाहा घेराई से भागा-भागा आया, तो वे चिल्लाते हुए बोले-अन्दर से कोई कपड़ा लाओ!

वह ज़रा देर में अन्दर से बाहर आकर बोला-सरकार, कोई कपड़ा नहीं है।

-अजब नामाकूल आदमी है!-उसी स्थिति में अँगूठा पकड़े ही वे चिल्लाये-अन्दर कोई कपड़ा ही नहीं दिखता तुझे?

-एक लुंगी टँगी है...

-ला, ला, वही ला! ...मेरे पास एक समझदार आदमी होना चाहिए! ये उजबक...

बिलरा बाँह पर लुंगी लटकाये हुए आ खड़ा हुआ, तो वे बोले-अबे, खड़ा-खड़ा मुँह क्या ताकता है? फाडक़े एक चौड़ी पट्टी दे मुझे!

-यह नयी लुंगी...

-अबे, फाड़ता है जल्दी कि...

चर्र से लुंगी फटने की आवाज़ आयी।

पट्टी बाँधकर वे बोले-ज़रा देर हो ही गयी। क्या बताऊँ, मुझे भी पहले ख़याल न आया कि पट्टी की ज़रूरत पड़ेगी। आपको अपने पास पाकर मैं भी जैसे अपना आपा खो

बैठा! खैर, देखिए, क्या होता है। कल भी आप सुबह आइएगा, एक बार और देख लूँगा। आइएगा न?

उसने सिर हिलाया।

-मन्ने मियाँ के क्या हाल-चाल हैं?

बाप बेटे के बारे में किसी से कुछ पूछे? उसने कुछ न कहा।

-अरे, एक बात तो मुँह से निकालिए!

-मन्ने की कलाई टूटी थी, तो आपने ही क्यों न बैठा दी? मऊ क्यों ले गये थे?-वह किसी तरह बोला।

वे हँसने लगे। बोले-आपको नहीं मालूम, उसकी एक हड्डी टूट गयी थी। मुझे डर था कि कहीं मैं अच्छी तरह न जोड़ सका, तो...समझे न? आपका तो ज़रा-सा...

-अब मैं जा रहा हूँ।

-बैठिएगा नहीं?

उसने सिर हिलाया।

-तो जरा रुकिए,-वे अन्दर गये और मुठ्ठी में कुछ लेकर बाहर आये।

लेकिन वह रुका नहीं, भाग खड़ा हुआ और वे चिल्लाते रहे-अरे सुनिए! ...सुनिए! ...

-अरे, बैठते क्यों नहीं?-अब्बा बोले-कि आज भी भागने का इरादा है?-और वे ज़ोर से हँसकर बोले-इनकी एक बार की एक बात सुनाएँ?

मुन्नी पानी-पानी होकर बोला-सुनाएँगे तो सच ही भाग जाऊँगा!

-तो फिर बैठिए!

मन्ने ने उसका हाथ पकडक़र खटिया पर बैठा दिया, तो अब्बा बोले-लाओ, भाई, मिठाई मुन्नी साहब को दे दो, यही अपने हाथ से बाँटकर सबको खिलाएँगे। चलिए, सबसे पहले आप कैलसिया को दीजिए।

कैलसिया! मुन्नी की नजर अभी उस पर पड़ी ही न थी। उसने चकित होकर आँखें उठायीं, तो सुनाई पड़ी एक रुपहली आवाज़-इन लोगन की जोड़ी देखकर मेरी आँखें जुड़ा जाती हैं!

मुन्नी ने उसकी ओर देखा, तो उसकी आँखें झपक गयीं। पहले ही परिचय, पहली ही दृष्टि में वह उसका प्रशंसक बन गया। जैसी उसने कल्पना की थी, वही साकार रूप। कैलसिया सुन्दर है, कैलसिया साहसी है और अब यह भी मालूम हुआ कि वह मधुर भी है।

-लेकिन इसी गाँव में कितने आदमी हैं,-बिलरा बोला-जो इनका साथ फूटी आँखों नहीं देख पाते। जाने कैसी-कैसी कुचराई करते रहते हैं...

-अरे, उसकी परवाह न करो, भइया!-कैलसिया बोली-अब मुझी को लेकर कैसी-कैसी बातों का ढोल नहीं पीटा जाता...

-कैसी बातों का?-मुस्कराते हुए अब्बा ने कहा-ज़रा मैं भी तो सुनूँ?

-आप का नहीं जानते?-शर्माकर आँखें झुकाती वह बोली-आपको भी जैसे यह-सब सुनकर बड़ा मजा आता है!

-वाह! मजे की बात में मज़ा क्यों न आये? ज़रा बता तो, लोग क्या कहते हैं? तू तो जानती ही है, मुझसे कोई कुछ नहीं कहता।

-किसकी हिम्मत है जो आपसे कोई कुछ कहेगा? जबान न खींच लेंगे आप!

-किसी की ज़बान मैं क्या खींच लूँगा? ...फिर किसी की ज़बान खींच लेने से ही क्या कोई बात रोकी जा सकती है? सच, बता न, मैं भी सुनना चाहता हूँ!

-दुत!-उसने आँखें मटकाकर कहा।

-दुत क्या? जो बात गाँव के सैकड़ों लोग कहते हैं, उसे कहने में दुत क्या?

-पाप लगेगा!

-नहीं, तुझे पाप नहीं लगेगा, बल्कि मन में कुछ होगा, तो कहने से वह भी निकल जायगा।

-का कहते हैं!

-तो कह ही डाल!

-इन लोगन के सामने आप मुझसे का कहलवाना चाहते हैं?

-ये क्या अब बच्चे रह गये हैं? इनसे अब कुछ छुपाकर भी क्या छुपाया जा सकता है? फिर छुपाया ही क्यों जाय? क्यों न इन्हें यह सब जानने-समझने का मौका दिया जाय। इन्सानी फ़ितरत जब तक ये नहीं जानेंगे, क्या करेंगे? फिर मन्ने साहब को तो एक अदीब बनना है। इनके लिए तो यह-सब जानना बहुत ज़रूरी है। और फिर इन्हें भी इसी गाँव में रहना-सहना है। इन्हें गाँव की फ़ितरत जाननी ही चाहिए। वर्ना बाद में इन्हें बड़ा दुख उठाना पड़ेगा। ...तू बता, कैलसिया, इनके सामने ही बता! मुझे इसमें कोई ऐब नहीं दिखाई देता। अकेले में तो शायद यह-सब तुझसे मैं पूछ भी न सकूँ! ...बोल!

कैलसिया अँगुलियाँ एक-दूसरे में उलझाने लगी। कसमसाकर उसने कई साँसें लीं। फिर भी बोल न फूटा।

-वाह! कचहरी में तो तेरी ज़बान कैंची की तरह चलती है और यहाँ ऐसा जता रही है, जैसे मुँह में ज़बान ही नहीं!

-यह बात ही ऐसी है, मियाँ। आप नहीं मानते तो मैं का कहूँ।

कैलसिया हैरान थी कि मियाँ को यह क्या हो गया है? क्यों बच्चों की तरह ज़िद कर रहे हैं? उन्हें गाँव की ऐसी कौन-सी बात है, जो न मालूम हो? फिर उसी के मुँह से ये क्यों सब सुनना चाहते हैं, वह भी इन लोगों के सामने? मियाँ के मन में क्या है? गाँव की वह नीच जाति की लडक़ी है, गँवार लड़कियों से भी गँवार। एक बात कहने-समझने की लियाक़त भी उसमें नहीं। थाने में, कचहरी में वह कैसे क्या बोल आयी, वह-सब वह ख़ुद समझने बैठे, तो न समझ पाये। मियाँ के साथ, सामने वह खड़ी होती है, तो न जाने कौन-सी शक्ति उसमें कहाँ से आ जाती है, जाने कैसे सरस्वती उसकी जिह्वा पर आ विराजती हैं और वह फर-फर बोलने लगती है। लोग हैरान हो-होकर उसका मुँह निहारते हैं। आज गाँव में, जवार में, ज़िले में कौन नहीं जानता? वह एक कलंकित लडक़ी है। कलंक का दाग़ लग जाने पर आँख उठाना भी कठिन हो जाता है। उस दिन गाँव की लडक़ी होकर भी जो घूँघट उसके मुँह पर गिरा था, वह फिर कभी उठेगा, ऐसा वह सोच भी न सकती थी। लेकिन उसके बाद इन्हीं मियाँ के कारण जाने वह लोक-लाज, वह भय कहाँ चला गया? थाने पर पालकी से वह उतरी, तो क्या वह वही कलंकित कैलसिया थी? कैसे फर-फर वह सारा बयान लिखा गयी। कैसे बाज़ार में

आध सेर मिठाई डोली में बैठी-बैठी अकेले खा गयी, पास ही माई थी, बापू थे, जाने कितने अपनी बिरादरी के लोग थे, किसी का मुँह भी न छूआ। अस्पताल में कैसी बेझिझक होकर उसने मुआयना करवाया। डोली में बैठते ही और यह जानकर कि मियाँ घोड़े पर उसके पीछे-पीछे आ रहे हैं, कैसा एक नशा-सा उसके दिल-दिमाग पर छा गया था। इतने बड़े मियाँ ने उस चमार की लडक़ी के लिए, जिसके माथे पर कलंक का टीका लग गया था, जिसके लिए आँख उठाना भी कठिन था, जो गाँव की नज़रों में हमेशा के लिए गिर गयी थी, पालकी मँगवायी, उसके पीछे-पीछे दौड़े...ओह, क्या यह सब कभी कोई सपने में भी सोच सकता था। ...नशा न चढ़े तो क्या हो? टिटिहरी को आसमान के बराबर घोंसला मिल गया हो जैसे! रात के समय जब पालकी गाँव में पहुँची, तो कौन उसके मन में बैठा कह रहा था कि मियाँ उसे अपने घर में ही उतारेंगे? लेकिन जब वह डोली पर से उतरी तो देखा, यह तो उसी का माटी का घिरौंदा है। उसके जी में आया कि पलटकर फिर तुरन्त पालकी में बैठ जाय और कहारों से कहे कि उसे मियाँ के पास पहुँचा दो, किसकी हिम्मत है जो उसकी बात टाल जाय! लेकिन उसी क्षण उसने पाया कि मियाँ का घोड़ा वहाँ कहीं नहीं है और उसका नशा अचानक टूट गया और वह कटे पेड़ की तरह माई की अँकवारी में गिर पड़ी।

रात-भर उसे लगा कि वह अजनबी घर में है, आस-पास के लोगों से उसका कोई नाता नहीं, ताड़ की चटाई पर लाकर यह किसने उसे पटक दिया? कितने ही औरत-मर्द उसे घेरे रहे। उसकी महीन साड़ी छू-छूकर देखते रहे। बार-बार कहते रहे, कैसा भाग्य है इसका, मियाँ ने इसका हाथ थाम लिया! ...यह कैसी चमक आ गयी है इसके चेहरे पर! ...यह तो पहचानी ही नहीं जाती! ...कितनी सुन्दर दिखाई देती है! ...जैसे उसके कलंक की बात सब भुला बैठे हों, जब वह खून से लथपथ घूँघट काढ़े...लेकिन अब वही उस बात को क्यों याद करे? ...

सुबह हुई तो सचमुच उसे अपना वह घर काटने लगा। और सचमुच वह निकल पड़ी। माई ने पूछा-कहाँ?

उसने कैसे कह दिया-मियाँ के यहाँ!

और वह शेरनी की तरह उसी तेलियाने से निकली, आँखे फाड़े सामने देखते, बेग़म चाल से। ऐसा लगता था कि धरती स्वयं उठ-उठकर उसके पाँवों की मनुहार कर रही है, लेकिन वह है कि अपने पाँवों से धरती को ठोकर मारती जा रही है! उसकी वह नयी, बारीक धोती...आज लोगों की नजरें उसी पर फिसलती रहीं।

कैलसिया के जी में आया कि वह चिल्लाकर कहे, मियाँ तुम्हीं ने कैलसिया को ऐसा बना दिया! लेकिन उसने ऐसा कहा नहीं। इतने दिनों में ही मियाँ को वह जान गयी है। किसी की किसी भी बात का जबाव दिये बिना वे नहीं रहते। न कोई लिहाज, न शर्म; न झिझक, न डर। और ज़बान क्या है, जैसे पहाड़ी नदी! लोग कानों से नहीं सुनते, आँखों से उनका मुँह ताकते है। ऐसा आईने की तरह साफ और शीशम की तरह सीधा और पहाड़ की तरह अडिग और शेर की तरह बेगम और आसमान की तरह बड़ा व्यक्तित्व...एक चमार की लडक़ी के साथ चलते हुए...संसार के आठों आश्चर्य क़दम-क़दम पर झुककर जैसे सलाम बजाते हैं। किसकी हिम्मत है कि उनके सामने मुँह खोले...और उस दिन...

मियाँ ज़िले से रात को लौटे थे। सुबह वह आयी, तो उन्होंने सिरहाने के लिपटे बिस्तर के नीचे से निकालकर दो फल दिये।

चिकने-चिकने, सुन्दर-सुन्दर, गोल-गोल फलों को हाथ में लेकर वह बोली-ये कौन फल हैं?

-सेब,-मियाँ ने कहा-खाकर देखो।

वह एक मुँह के पास ले जाकर काट ही रही थी कि दरवाज़े पर साइकिल टिकाकर एक युवक ने कहा-सलाम!- और अन्दर आ गया और उसे घूर-घूरकर देखने लगा और वह सेब कैलसिया के दाँतों में ऐसे दबा रहा, जैसे छूट ही न रहा हो।

अब क्या था। मियाँ ज़रा मुस्कराये और तपाक से बोल उठे-क्या देख रहे हो, तुम्हारी अम्मा है!

वह तो मारे लाज के अन्दर भाग गयी। जाने उस युवक पर क्या बीती। बस, मियाँ का चित कर देने वाला ठहाका देर तक गूँजता रहा।

वह बेसाख्ता हँस पड़ी। यह प्रसंग जब कभी, जहाँ कहीं उसे याद आता है, वह इसी तरह हँस पड़ती है। इसमें कौन-सा भाव रहता है, वह नहीं जानती, बस मन आप ही हँस पड़ता है, पागल की तरह! और ऐसी बेबात की हँसी सुनकर कौन चकित न हो।

मन्ने, मुन्नी, बिलरा चकित होकर उसकी ओर देखने लगे। उसकी हँसी थमने ही को न आ रही थी। कोई लडक़ी भी भला मर्दों के सामने इस तरह हँसती है? लेकिन नहीं, वह लडक़ी ही है, उसने आँचल उठाकर मुँह ढँक लिया, और उन्होंने देखा कि उसकी

पुष्ट छातियाँ उसकी झूली के बटन तोड़े दे रही हैं। और उसी तरह मुँह ढँके ही वह बोल गयी-लोग कहते हैं, मियाँ कैलसिया से फँसे हुए हैं!

-और तुम्हें शर्म लगती है!-मियाँ ने मुस्कराकर कहा।

झट आँचल मुँह से हटाकर वह आँखें फाडक़र बोली-मुझे काहे की सरम? मेरे मुँह पर कोई कहकर तो देखे! उसकी इज्जत न उतार दूँ तो मेरा नाम कैलसिया नहीं।

-बाप रे बाप! तुझसे बात करते तो अब मुझे भी डर लगता है! ना-ना, इसीलिए बुज़ुर्ग लोग कह गये हैं कि...

-छोटे को मुँह नहीं लगाना चाहिए!-कैलसिया ने बात पूरी कर दी और फिर उसी तरह हँस पड़ी।

-नहीं-नहीं-मियाँ बोले-मैं तो कह रहा था कि औरत की आँख से शर्म न जाय!

और चमार की लडक़ी अचानक गम्भीर हो गयी। बोली-सरम तो चली गयी! लेकिन, मियाँ, आप ही ने तो उस दिन कहा था कि कैलसिया, जो चला जाय, उसके लिये दुख न मनाना चाहिए, आगे कुछ न जाय, ऐसी कोसिस करनी चाहिए। ...अपने भगवान् की यह बात मैंने गाँठ से बाँध ली है। अब कुछ भी न जायगा, कुछ भी नहीं! किसी की हिम्मत नहीं जो मुझसे कुछ भी छीन ले सके! अब वह कैलसिया नहीं रही, वह मर गयी! यह नयी कैलसिया जनमी है, जो अपने भगवान के सिवा किसी को नहीं जानती, किसी को नहीं मानती। ...और उसकी आँखे मुँद गयीं।

और मुन्नी और मन्ने को लगा, जैसे वे किसी मन्दिर में बैठे हों।

लेकिन मियाँ बोले-यह मुसलमान का घर है, रे कैलसिया! तू यहाँ भगवान-वगवान का नाम न ले! ...ले, मिठाई खा। कब से बिलरा कटोरा लिये खड़ा है।

और कैलसिया की तन्द्रा टूट गयी। बोली-अरे, मैं तो भूल ही गयी थी! मुन्नी बाबू, दो मिठाई!-और उसने हाथ फैला दिये।

मुन्नी किसी का भी इस तरह हाथ फैलाना बर्दाश्त नहीं कर पाता। बोला-क्या मैं ही एक अछूत हूँ यहाँ?-और हँस पड़ा-रख बिलरा कटोरा पलंग पर, जिसको खाना होगा, आप ही निकालकर खायगा!

-अरे-रे, ऐसा मत कीजिए, साहब !-अब्बा बोले-आप कैलसिया को नहीं जानते, यह सब सफ़ाचट कर जायगी! और कहीं हलवाई को मालूम हो गया, तो कटोरे का दाम भी मुझे चुकाना पड़ेगा! आप जानते नहीं, किसी के हाथ से अपने हाथ में लेकर खाने में भी एक मज़ा आता है।

कैसे हैं यह मन्ने के अब्बा? क्या किसी को भी छोडऩा नहीं जानते? ...गाँव के लोग इनसे आतंकित रहते हैं। गाँव के ये सबसे बड़े जमींदार हैं। जमींदार नाम ही आतंक का है। लेकिन कैसे हैं ये मन्ने के अब्बा? ...कैलसिया एक चमार की लडक़ी है...यह बिलरा उनका चरवाहा है...यह मुन्नी गाँव के एक मामूली बनिये का लडक़ा है...और यह मन्ने है उनका बेटा...भावी ज़मींदार, जिसका आतंक लोगों ने न माना, तो ताश के पत्तों के महल की तरह एक फूँक में सब ढह जायगा। बीस साल की ज़िन्दगी इसी गाँव में मुन्नी की भी हुई...एक काम तो मन्ने के अब्बा करते, जिससे उनका आतंक सिद्ध होता। छोटे-छोटे ज़मींदारों, इनके भाई-बन्दों के रोज़-रोज़ कितने-कितने ज़ोर-ज़ुल्म के क़िस्से सुनने में आते हैं, लेकिन आतंक सबसे अधिक इन्हीं का है। इसी आतंक के बल पर इनकी ज़मींदारी चल रही है, रोब माना जाता है। और यह भी जैसे उस आतंक को तोडऩा नहीं चाहते। न किसी से मिलते हैं, न बात करते हैं। नमाज़ और तसबीह...

मुन्नी ने देखा, कैलसिया अब भी हाथ फैलाये हुए थी। बोली-बाबू, यह तो हमारी आदत हो गयी है, मन में बुरा नहीं लगता, न यही समझते हैं कि यह बुरा है...

-बल्कि मन करता है,-मियाँ मुस्कराकर बोले-कि कोई अपने हाथ से दे और हम खायँ! ...मन्ने साहब की अम्मा जब तक ज़िन्दा रहीं, मैं हमेशा ऐसा ही करता था। जब कोई चीज़ वे लातीं, मैं हाथ फैला देता था। वह डाँटतीं, यह क्या आदत है तुम्हारी? और मैं कहता, तुम अपने हाथों की मिठास से मुझे महरूम रखना चाहती हो? ...

तभी बाबू साहब आ गये। उनके आते ही समस्या हल हो गयी। मन्ने के अब्बा अपनी बात तोडक़र बोले-लीजिए, पुजारीजी आ गये! इन्हीं के हाथ से आप लोग परसाद लीजिए!

सबने बाबू साहब को सलाम किया।

पलंग पर उनके पास ही बैठते हुए बाबू साहब ने कहा-क्या बात है, मियाँ बहुत ख़ुश नज़र आते हैं?

-कब से आयी मिठाई आपकी राह देख रही है!-मियाँ ने हँसते हुए कहा।

-किसी अच्छे आदमी का मुँह देखकर आज चला था!- बाबू साहब बोले-लेकिन बात क्या है? ऐसे ही मिठाई आयी है, या कोई ख़ास...

-नहीं, ख़ास बात ही है, बल्कि दो बातें हैं!-मियाँ ने कहा।

-अच्छा! तब तो दो बार मिठाई मिलनी चाहिए! बातें भी ज़रा सुन लूँ।

-एक तो यह है कि मन्ने साहब के पास होने की आज ख़बर आयी है...

-मुबारक ! लेकिन यह तो कोई ख़ास बात हुई नहीं, इनको तो पास होना ही था। दूसरी बात सुनाइए!

-दूसरी बात यह है कि कैलसिया ने इनके पास होने की ख़बर सुनकर कहा, मियाँजी, तब तो मिठाई खिलाइए।

-हाँ, यह ज़रूर ख़ास बात है!- कहकर बाबू साहब हँस पड़े। बोले-यह कैलसिया भी एक ही बेवकूफ़ है, ऐसी-वैसी मामूली चीजों के लिए मुँह खोला करती है! यह नहीं होता कि एक ही बार मियाँ से कोई ऐसी चीज़ माँग ले कि ज़िन्दगी-भर की छुट्टी हो जाय!-और वे फिर हँसने लगे।

कैलसिया भी आँचल से मुँह ढाँककर हँस पड़ी। मियाँ उसकी ओर देख रहे थे। बोले-बाबू साहब, कोई ग़लत बात नहीं कह रहे...

कि कैलसिया ने आँख झुकाये ही, हाथ उठाकर अँगुली के सामने दीवार की ओर संकेत किया।

सब लोग उसकी ओर देखने लगे। शीशे में मढ़ी एक छोटी-सी तख़्ती टँगी थी। सुन्दर अक्षरों में यह सुभाषित लिखा था :

माँगत-माँगत मान घटे, अरु प्रीत घटे नित के जाये से।

ओछे की संगत बुद्धि घटे, अरु क्रोध घटे मन के समझाये से।।

बाबू साहब हँसकर बोले-तोते की तरह मियाँ ने तुम्हें तो पाठ पढ़ा दिया, लेकिन ख़ुद अपना पाठ भूल गये! इसीलिए लोग कहते हैं, इनकी मति बौरा गयी है!

मियाँ जी हँसने लगे। बोले-अच्छा, आप तो इन लोगों की बातों के चक्कर में आकर मिठाई ख़राब न कीजिए! उठिए, बिलरा कब से मिठाई लिये खड़ा है।

-खड़ा है?- बाबू साहब ने उठते हुए कहा-यह तो मैंने देखा ही नहीं, ला, ला रे, बिलरा !

-देखिएगा, पलंग से छू न जाय!-मियाँ ने हँसते हुए कहा।

-आपकी संगत से और क्या होगा? एक धरम-करम रह गया था, देखते हैं, अब वह भी ख़तरे में है। ...अरे बिलरा, दौडक़र बग़ल के बनिये के यहाँ से लोटा मँजवाकर पानी तो ला।

बाबू साहब! प्रेमी को जब भी बाबू साहब की याद आती है, एक ही शब्द उसके मुँह से निकलता है-फ़रिश्ता! फ़रिश्ता! ...

दरवाज़े पर तभी ठक-ठक की आवाज़ हुई और फिर-प्रेमी! प्रेमी!- की पुकार।

प्रेमी की तन्द्रा टूटी। उसके दिमाग़ ने एक झटका खाया। पुकार आती जा रही थी-प्रेमी! प्रेमी। दरवाज़ा खोलो!

यह पाण्डे है। अनमना-सा उठकर, सिटकनी खिसकाकर दरवाजा खोल दिया।

पाण्डे ने अन्दर आकर कहा-अँधेरे में क्यों पड़े हो?

प्रेमी ने कोई उत्तर न दिया। उसने बिजली का बटन दबा दिया और चारपाई पर जा बैठा। उसका सिर झुका हुआ था।

उसकी बग़ल में बैठकर पाण्डे ने कहा-यार, वह बात सही है। कल पण्डितजी ने मुझे अपने घर पर बुलाया था। कल ही तुमसे बतानेवाला था, लेकिन बता न सका! तुमको यह जानकर कितना दुख होगा, यही सोचता रहा।

प्रेमी ने आँखें उठाकर उसकी ओर देखा, लेकिन बोला कुछ नहीं। फिर उसी तरह सिर झुका लिया।

-पण्डितजी ने मुझे विषय बता दिया है। मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ। शायद इससे तुम्हारे प्रति होनेवाला अन्याय कुछ कम हो जाय।

-नहीं-नहीं!-प्रेमी ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा-मुझे जानने की कोई जरूरत नहीं। अन्याय इससे कम न होगा, बल्कि उसका भार मेरे सिर पर आ पड़ेगा। मैं यह नहीं सह सकता!

-लेकिन मुझे तो बिना बताये शान्ति नहीं मिलेगी,-पाण्डे ने दुखी स्वर में कहा-मेरे ही लिए तुम सुन लो!

-नहीं, पाण्डे, तुम मुझे मत बताओ!-प्रेमी ने झुँझलाकर कहा-अपनी शान्ति के लिए मेरी शान्ति नष्ट न करो। उस स्थिति में मैं प्रतियोगिता में कभी भी भाग न लूँगा, यह समझ रखो। मुझे पारितोषिक की कोई चिन्ता नहीं। मैं तो योंही बोलना चाहता था। बात यहाँ तक बढ़ जायगी, मैं न जानता था। खैर, मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। तुम्हारे-जैसे इंसान पर मुझे गर्व है। तुमने मुझे आज जीत लिया, मैं तुम्हें हमेशा याद रखूँगा!

-मुझे बनाओ मत!-पाण्डे ने मर्माहत स्वर में कहा-इसमें मेरी कोई बड़ाई नहीं, बड़ाई तुम्हारी है, जिसे दग़ा दे जाना मेरे लिए असम्भव था। जो तुम्हें नहीं जानता, तुमसे जल सकता है; लेकिन जो तुम्हें जानता है, उसका सिर तुम्हारे सामने झुके बिना नहीं रह सकता। तुम जिस स्थिति में रहते हो, वह कम विकट नहीं है। वास्तव में तुम सच्चे इंसान हो और हैवानों के विरुद्ध अपने आदर्श के लिए संघर्ष कर रहे हो। तुम...

-नहीं-नहीं, यह अन्तर इतना बड़ा नहीं है!-प्रेमी ने उसकी बात काटकर कहा-एक सीढ़ी ऊपर-नीचे हम ज़रूर हैं, लेकिन सीढियों पर रपटन बहुत है। ऊपर चढना बहुत कठिन है, नीचे फिसलना बहुत आसान। जिन लोगों ने मेरा हाथ पकडक़र इस सीढ़ी पर ला खड़ा किया, आज उनका सहारा मुझे न रहे, तो पता नहीं, फिर कहाँ जा गिरूँ। अभी मेरी अपनी कोई ताक़त नहीं, लेकिन यह चाह ज़रूर है कि मैं गिरूँ नहीं। तुम्हारे-जैसे लोगों से मुझे सहारा मिलता है। तुमने आज जो काम किया है, उसका महत्व तुम अपने लिए कुछ न समझो, यह हो सकता है, लेकिन इसका महत्व मेरे लिए कितना बड़ा है, यह तुम नहीं जान सकते। फूल बेचारे को क्या मालूम कि उसका सौन्दर्य एक मनुष्य के मन-प्राण के लिए क्या महत्व रखता है। प्रकृत गुण की यही विशेषता है, जो किसी भी संस्कारगत गुण में नहीं पायी जाती। मैं ऐसे ही एक फूल के बारे में सोच रहा था, जब तुमने दरवाजा खटखटाया। कहो तो तुम्हें भी कुछ सुनाऊँ, उसके विषय में?

-तुम ख़ुद भी तो एक फूल से कम नहीं हो, तुम्हें अगर यह मालूम होता कि तुम्हारी हस्ती क्या है, तो तुम यह-सब मुझसे न कहते। तुम्हारी स्थिति में रहकर मेरे लिए तो जीना मुश्किल हो जाता। तुम्हें क्या मालूम नहीं कि मुसलमान तुम्हें काफ़िर कहते हैं, हिन्दू तुम्हें धूर्त मुसलमान कहते हैं और कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो तुम्हें रँगे सियार या चमगादड़ के नाम से याद करते हैं।

-मालूम है, लेकिन उनकी लांछनाओं को मैं कोई महत्व ही नहीं देता, इसलिए उनकी बातों का मुझपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। आज का वातावरण ही कुछ ऐसा बन गया

है कि सर्व-साधारण के लिए उसके ऊपर उठकर कोई बात करना कठिन है। तुम्हारे पण्डितजी ने जिस मनोवृत्ति का परिचय दिया है, हमारे मौलाना भी उससे ऊपर नहीं है। फिर लडक़ों की बात कौन करे! आज अगर लडक़ों को यह बात मालूम हो जाय कि तुमने पण्डितजी की बात मुझे बता दी है, तो वे तुम्हें भी शायद ग़द्दार के नाम से याद करें। इसलिए मेरी और तुम्हारी परिस्थिति में कोई विश्ोष अन्तर नहीं है। सच पूछो तो हमारे-तुम्हारे-जैसे सभी लोगों की यही स्थिति है। निष्पक्ष आचरण ही आज कटहरे में खड़ा है और साम्प्रदायिक द्वेष का बोलबाला है। इस बाढ़ की प्रबल धारा में कितने बह जाएँगे; कितने रह जाएँगे, कौन जानता है? लेकिन जो रह जाएँगे...

तभी पर्दा उठा और वियोगी की आवाज़ आयी-भई प्रेमी, चलते हो रेस्तराँ?-और पाण्डे पर उसकी निगाह पड़ी तो बोला-आप भी यहीं हैं! वाह, हम लोग तो तुम दोनों को लेकर लड़ रहे थे कि प्रतियोगिता में अव्वल कौन आयगा, और तुम लोग यहाँ चोंच में चोंच डाले बैठे हो? मिली जोड़ छुटेगी क्या?

और वह जोर से हँस पड़ा और उसके साथ ही उसके हाथ की कटोरी का घी छलक उठा।

-देखो, देखो, अपना घी बचाओ!-पाण्डे बोला-सुना गया था कि कल तुमने एक पाव मलाई खायी!-और वह भी जोर से हँस पड़ा।

-मैं जितना भी खाऊँ-पीऊँ, उससे कुछ बनने-बिगड़ने का नहीं! मैं तो आल्सो रैनवालों में हूँ। सुहागिन वो जिसे पिया चाहे! लेकिन, बेटा, इसे मैं कोई मर्दानगी नहीं समझता! प्रेमी की बात ही और है। मैं तो इसकी प्रशंसा करता हूँ।

-भाई वियोगी,-प्रेमी बोला-मुझे तो बख़्शो!

-नहीं, आज मैं आपको छोड़नेवाला नहीं!-वियोगी बोला-भगवान् क़सम, आज मैंने एक ऐसी फडक़ती हुई चीज़ लिखी है कि सुनोगे तो कहोगे! चलो, उठो!

-मैं तो एक शर्त पर चलने को तैयार हूँ,-पाण्डे बोला।

-क्या?-वियोगी ने पूछा।

-अगर तुम अपना घी खिलाओ!

-यह नहीं होने का!-प्रेमी बोला-इसी डर से तो यह मेस में शामिल नहीं होता।

-और तुम किस डर से मेस में शामिल नहीं होते?-वियोगी ने प्रेमी से पूछा।

-गोश्त के!-पाण्डे बोला।

सभी जोर से हँस पड़े।

-तो चलो,-वियोगी ने कहा।

-मेरी शर्त मान लो!-पाण्डे बोला-मैं तो चलने को तैयार हूँ।

-यार, तुम क्यों टाँग अड़ाते हो, मैं तो प्रेमी से कह रहा हूँ।

-अच्छा, तो आज मेरे खिलाफ़ मोर्चा बनाने की तैयारी है!-पाण्डे बोला-जाओ, भाई प्रेमी, इसी बहाने आज तुम्हें इनका घी तो खाने को मिले!-और वह हँस पड़ा।

प्रेमी जानता था, रेस्तराँ में आज किस तरह की बातें होंगी। वह बोला-नहीं, अभी तो मैं नहाया-धोया भी नहीं। तुम चलो, मैं आता हूँ।

वियोगी चला गया तो पाण्डे बोला-बड़ा ही निरीह प्राणी है, बाल बढ़ा रहा है।

-वियोगी है, सुध न रहती होगी!-प्रेमी बोला।

दोनों हँस पड़े।

-इसके वियोगी नाम की भी एक कहानी है, पाण्डे, सुनोगे?

जाने दो! आजकल उपनामों की सभी कहानियाँ एक-सी ही होती हैं। कई सुन चुका हूँ।

-मैं तो इस पर एक लेख लिखने की सोच रहा हूँ।

-ज़रूर लिखो, बड़ा दिलचस्प होगा।

तभी खोजता-खोजता पाण्डे के मेस का नौकर आ बोला-आपकी थाली लग गयी है, लाऊँ?

-हाँ,-कहकर पाण्डे उठा। बोला-तो मैं क्या करूँ? मेरे जी में आता है कि मैं प्रतियोगिता में भाग ही न लूँ।

-नहीं-नहीं, तुम ऐसा हरग़िज न करना! ...फिलहाल तुम जाकर खाना खाओ। फिर बातें होंगी।-पाण्डे के कन्धे को थपथपाते हुए प्रेमी ने उसे बाहर पहुँचा दिया।

मन बहुत खिन्न था। कुछ भी करने को जी नहीं हो रहा था। उसने दरवाज़ा फिर बन्द कर दिया और मेज़ पर जा बैठा। दो दिन पहले आयी बाबू साहब की चिठ्ठी उठा ली और पढने़ लगा। ...बाबू साहब! बाबू साहब! ...

उस समय वह दसवें में पढ़ रहा था। एक शाम अचानक गाँव से बिलरा ज़िले के स्कूल में आया और कहा कि बाबू साहब ने बुलाया है, तुरन्त चलिए।

मन्ने ने पूछा-क्या बात है? ऐसी मेरी क्या ज़रूरत पड़ गयी?

बिलरा सिर झुकाकर बोला-और मुझे कुछ नहीं मालूम। आप तुरन्त चल पड़िए। आखिरी मोटर छूटने का बखत हो गया है। बाबू साहब ने कहा था, साथ ही लेकर आना, देर बिलकुल न करना।

वह चल पड़ा। मोटर में भी उसने एकाध बार बिलरा से कुछ जानना चाहा, लेकिन वह कुछ न बोला, चुपचाप, उदास, सिर लटकाये बैठा रहा।

क़स्बे में मोटर रुकी तो बाबू साहब खड़े मिले। उन्होंने उसका हाथ पकडक़र नीचे उतारा।

सलाम करने के बाद उसने पूछा-क्या बात है, बाबू साहब? इस तरह आपने मुझे क्यों बुलाया?

सिर झुकाये बाबू साहब ने कहा-घर चलिए-और उन्होंने कदम बढ़ा दिया।

वह पीछे-पीछे चल रहा था। उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा था, मन जाने कैसा हो रहा था, जाने क्या बात है। कोई कुछ बताता क्यों नहीं? रास्ते में कई बार उसका मन तड़पा कि बाबू साहब से वह पूछे, लेकिन वह पूछ न सका। बाबू साहब से उसका कोई खास सम्बन्ध न था। छुट्टियों में एकाध बार वह उनके यहाँ हो आता, बाबू साहब ख़ुद जो जी में आता सुना जाते। वह उनसे खुला न था, अपनी ओर से शायद ही कभी कुछ कहता। बाबू साहब भी बिलरा की ही तरह उदास, मौन, सिर लटकाये चल रहे थे।

घर पहुँचते ही सब-कुछ मालूम हो गया। सुबह अचानक अब्बा के दिल की धडक़न बन्द हो गयी थी। सुनकर वह काठ हो गया। एक बूँद आँसू भी उसकी आँख से न निकला। वह इस तरह ख़ामोश होकर बैठ गया, जैसे हमेशा के लिए गूँगा हो गया हो।

तीन-तीन बहनें और बेवा बुआ उससे लिपट-लिपटकर बिलख रही थीं और बिरादरी और मुहल्ले की कितनी औरतें उन्हें समझा रही थीं। लेकिन मन्ने को जैसे कुछ भी

दिखाई न पड़ रहा था, कुछ भी सुनाई न पड़ रहा था। वह ख़ामोश था और एक टक शून्य में निर्भाव आँखों से तक रहा था। फिर सहसा उसने दोनों हाथों से मुँह ढाँक लिया।

थोड़ी देर बाद ही पट्टीदार जुब्ली मियाँ ने वहाँ आकर कहा-उठो, चलो, सब तैयारी हो चुकी है। बिरादरी बाहर खड़ी इन्तजार कर रही है। मय्यत सुबह से पड़ी है और अब रात होने को आयी। वक़्त बरबाद करना ठीक नहीं।

उसने अन्दर-ही-अन्दर ताक़त और हिम्मत बटोरने की कोशिश की और उठ खड़ा हुआ।

बाहर भीड़ लगी थी। अँधेरे में कई लालटेनें थोड़े-थोड़े प्रकाश का घेरा बनाये सहन और मसजिद में इधर-उधर दिख रही थीं। मसजिद से लोगों के वज़ू करने, कुल्ले और खँखारने की आवाज़ें आ रही थीं। ओसारे में वह ज़रा देर के लिए ठिठका और एक बार इधर-उधर देखा। बाबू साहब लपककर उसके पास आये और उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

जुब्ली ने कहा-जनाज़े की नमाज़ होने जा रही है! शामिल होना हो तो चलो, जल्दी वज़ू करो।

मन्ने को नमाज़ में कोई दिलचस्पी नहीं थी। बहुत हुआ तो ईद में वह अब्बा के साथ नमाज़ पढने ईदगाह चला जाता था। जुब्ली मियाँ की बात उसने समझी। दूसरा कोई मौक़ा होता तो वह उनसे भी समझता। धर्म के रीति-रिवाजों को लेकर अक्सर हम-उम्रों से उसकी झड़प हो जाती।

अपनी बात कहकर तेजी से जुब्ली मसजिद की ओर चला गया, तो बाबू साहब ने कहा-चलिए, जनाजे की नमाज़ पढ़िए।

उसने बाबू साहब के मुँह की ओर एक बार देखा और धीरे से ओसारे से उतरकर मसजिद की ओर बढ़ा। बाबू साहब साथ-साथ चलते रहे।

मसजिद के दरवाजे पर जनाज़ा रखा था। लालटेन की धँुधली रोशनी उस पर पड़ रही थी। उसके जी में आया कि एक बार पुकारे, अब्बा! लेकिन उसे याद नहीं कि कभी इस प्रकार उसने अब्बा को पुकारा हो। अब्बा उसे कितना प्यार करते थे, लेकिन उससे, उसी से क्या, सबसे कितना अलग-अलग रहते थे, जैसे उनकी दुनियाँ ही सबसे अलग

हो। वीरान खण्ड में वे अकेले पड़े रहते, न घर से कोई वास्ता, न दूसरों से। गाँव में किसी के यहाँ जाते-आते भी नहीं।

बाबू साहब का हाथ फिर उसके कन्धे पर आ पड़ा और वह मसजिद में दाख़िल हो गया।

नमाज़ के बाद लोग निकले और जनाज़ा उठा। मन्ने और बाबू साहब एक ओर और जुब्ली और कोई एक अन्य दूसरी ओर।

बड़े दरवाजे पर फिर नमाज हुई और फिर क़ब्रगाह पर।

आख़िरी दीदार के मौक़े पर आख़िर मन्ने की आँखों से आँसू ढुलकने लगे। बाबू साहब का एक हाथ उसके कन्धे पर था और दूसरा अपनी आँखों पर। मन्ने का कलेजा खामोश चीखों से फटा जा रहा था, अब्बा जा रहे हैं! ...अब्बा जा रहे हैं!

लाश क़ब्र को सौंप दी गयी। फिर एक लालटेन लटकायी गयी...देख लो, एक बार और जानेवाले को देख लो! यह आख़िरी बार है, फिर कभी न देख पाओगे? धरती हमेशा के लिए उसे अपनी गोद में छुपा लेगी! ...

मन्ने झुका, तो उसके जी में आया, वह कूदकर अब्बा से जा लिपटे। कितनी बार उसके जी में आता था कि वह अब्बा से लिपट जाय, लेकिन उसे याद नहीं कि कभी वह अपने अब्बा से लिपटा हो। अम्मा की मौत का उसे कुछ भी अच्छी तरह याद नहीं, लेकिन इतना उसे ज़रूर याद है कि अम्मा के जाने के बाद अब्बा बिलकुल ही बदल गये थे। बहनों का भी यही अनुभव था और उसका अपना भी। वे उन्हें बुलाकर कभी प्यार न करते, कभी कोई मीठी बात न करते...क्यों, अब्बा क्यों अचानक इस तरह बदल गये? क्या वे जानते थे कि इतनी ही उम्र में मर जायँगे और अगर उन्होंने हमें प्यार दिया, तो हमें बहुत दुख होगा? अब्बा! अब्बा! अपनों के सम्बन्ध को क्या इस तरह बहलाया जा सकता है? ...अब्बा! अब्बा! क्या यह सच है? या आप खुद प्यार से डरते थे कि आप हमारा प्यार पा लेंगे तो हमसे ज़ुदा होते आपको वैसा ही दु:ख होगा, जैसे अम्मा से ज़ुदा होते? अब्बा! अब्बा! यह कितना अच्छा होता कि तुम हमें प्यार कर लेते, मन भरकर प्यार कर लेते, हम तुम्हें प्यार कर लेते, कोई हसरत न रखते! ...अब्बा! अब्बा? मैं तुम्हारी लाश से ही एक बार क्यों न लिपट लिया? अब्बा! अब्बा! तुमसे हमें क्यों डर लगता था? तुमने यह डर क्यों हमारे दिलों में पैदा किया था? इसका क्या राज़ था, अब्बा?

बाबू साहब के एक हाथ ने उसके कन्धे को खींचा और दूसरे ने उसके हाथ में मिट्टी थमा दी।

क़ब्र पुर गयी।

साईं ने मन्ने के पास आकर कहा-चलिए, बाबू, घर पर भी कुछ, रस्मे पूरी करनी होंगी। बड़ी रात हो गयी।

मन्ने कब्र को ताक रहा था, उसकी आँखों से झर-झर आँसू बह रहे थे।

साईं ने एक बार फिर कहा। फिर जुब्ली ने उसका हाथ पकडक़र कहा-चलो, अब यहाँ क्या खड़े हो? बिरादरी इन्तज़ार कर रही है। बहुत देर हो गयी!

मन्ने उसी तरह क़ब्र को ताकता खड़ा रहा।

आखिर बाबू साहब बोले-आप लोग चलिए, मैं इन्हें लेकर आता हूँ।

धीरे-धीरे सब लोग चले गये। क़ब्रगाह में सन्नाटा छा गया। मन्ने उसी प्रकार खड़ा रहा, बाबू साहब उसी प्रकार खड़े रहे।

एक ओर से अपने पाँवों से सूखे पत्तों को चरमराते हुए एक और प्राणी उनके पास आ खड़ा हुआ। बाबू साहब ने उसकी ओर देखा और होंठों में ही कहा-कैलसिया, तू कहाँ थी?

कैलसिया ने कोई जवाब न दिया। उसने आगे बढक़र क़ब्र पर सिर पटक दिया और दोनों हाथ फैलाकर, क़ब्र से लिपटकर, फूट-फूटकर रोने लगी।

मन्ने के जी में कब से आ रहा था कि वह भी ऐसा ही करे, अब्बा की क़ब्र से लिपटकर रोये...इतना रोये...इतना रोये कि...लेकिन वह वैसा न कर सका। और कैलसिया! कैलसिया शायद अब्बा के उसकी अपेक्षा कहीं ज़्यादा नज़दीक थी। ओह! ओह!

कैलसिया बिलख रही थी-मियाँ! मैं तुमको कन्धा भी न दे सकी! मैं तुमको मिट्टी भी न दे सकी! मियाँ, मैं औरत क्यों हुई? मियाँ, मैं चमार क्यों हुई? मियाँ! मियाँ! मियाँ!-और वह अपना सिर बार-बार क़ब्र पर पटकने लगी।

मन्ने मन-ही-मन जैसे चीख़ उठने को हुआ, कैलसिया, तू उन्हें कन्धा न दे सकी, उन्हें मिट्टी न दे सकी, लेकिन तू उनकी क़ब्र से लिपट तो सकती है! और मैं, उनका बेटा?

मैंने कन्धा भी दिया है, मिट्टी भी दी, लेकिन मैं उनकी क़ब्र से लिपट नहीं सकता। जाने कहाँ, मन में कैसी एक दहशत बैठी हुई है कि अगर मैंने ऐसा किया, तो जाने अब्बा क्या कर बैठें।

सूखे पत्ते सन्नाटे को खडख़ड़ाते हुए गिर रहे थे। गहन अन्धकार में केवल कुछ आहों, कूछ मूक और कुछ अस्फुट स्वरों का प्रकाश था। इसी प्रकाश में तीन प्राणी चार प्राणियों को देख रहे थे, या कौन जाने, एक प्राणी अपने तीन प्राणियों को, जो उसके जीवन में सबसे अधिक नज़दीक थे, देख रहा था।

मन्ने घर से खण्ड की ओर जब चला, तो रात जाने कितनी बीत चुकी थी।

बाहर सहन में छोटी चौकी पर बाबू साहब लेटे थे। और दरवाजे पर लालटेन रखे कुहनियों में सिर डाले बिलरा ज़मीन पर बैठा था।

आहट पाकर बाबू साहब थके स्वर में बोले-कौन है?

-मैं हूँ,-मन्ने ने कहा।

बिलरा सुनकर चट उठ खड़ा हुआ और एक ओर होकर चूतड़ की धोती झाड़ने लगा।

मन्ने ने कहा-बाबू साहब, आपने कुछ भोजन किया?

-इच्छा नहीं है। आपको आराम करना चाहिए।-बाबू साहब ने जमुहाई लेते हुए कहा।

-नहीं, ऐसे आप कैसे रहेंगे? बिलरा, बाबू साहब के लिए...

-नहीं, नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। आप आराम कीजिए।-बाबू साहब ने हाथ हिलाकर कहा-ऐसे मौक़े पर हम लोगों के यहाँ उपवास करने का रिवाज है। आप और कुछ न सोचिये।

मन्ने से बाबू साहब का यह पहला साबिक़ा था। थोड़ी देर पहले के मन्ने में और इस समय के मन्ने में कितना फ़र्क़ आ गया था! ...मन्ने बाबू अपना कत्तव्य समझते हैं, ऐसे में भी उन्हें अपने कत्तव्य का ज्ञान है! बाबू साहब कुछ आश्वस्त हुए।

लालटेन उठाकर, भिड़ा दरवाज़ा ठेलकर मन्ने अन्दर घुसा। अब्बा की चारपाई उसी तरह पड़ी थी। सिरहाने लिपटा हुआ बिस्तर वैसे ही पड़ा था। दीवारों पर सुभाषित उसी तरह टँगे थे...वह पैताने खड़ा हुआ हर चीज़ देख रहा था और उसे लग रहा था कि जैसे

हर चीज़ आज अब्बा के बदले उसे पाकर हैरत से उसकी ओर देख रही हो और उसे पहचानने की कोशिश कर रही हो। ...उसने आगे बढक़र अन्दर का दरवाज़ा खोलना चाहा, तो पाँव किसी से टकरा गये। उसने चौंककर नीचे देखा, ज़मीन पर कैलसिया पड़ी थी। अब्बा के जूतों पर उसका सिर पड़ा था। वह गहरी नींद में सो रही थी। मन्ने कुछ देर तक उसे देखता रहा, कुछ सोचता रहा। ...मन्ने के अब्बा न रहे, बाबू साहब के दोस्त न रहे, लेकिन इस कैलसिया के वह कौन थे? यह चमार की जवान लडक़ी यहाँ पड़ी है, जैसे किसी से रूठकर ज़मीन पर पड़ी-पड़ी सो गयी हो। आज इसे कोई मनानेवाला नहीं, कोई उठानेवाला नहीं। आज जैसे उसे मालूम हो गया हो कि उसका अधिकार अब्बा की सिर्फ़ एक ही चीज़ पर रह गया है और वह उसे बड़े जतन से किसी मूल्यवान वस्तु की तरह सिर के नीचे दबाये सो रही है कि कहीं नींद में उसकी वह चीज़ कोई खींच न ले। ...उसके जी में आया कि वह कैलमिया को उठाकर चारपाई पर सुला दे और उसे बता दे कि उसके प्रति जो भी उसके कत्र्तव्य होंगे, वह उन्हें निबाहेगा, अब्बा की किसी भी ज़िम्मेदारी को वह छोड़ेगा नहीं। ...लेकिन तभी वह सहम उठा। क्या अब्बा के बराबर उसमें शक्ति और साहस है? ...समझ-बूझ है? ...दुनियाँ और ज़िन्दगी का ज्ञान है? ...उसने अभी देखा ही क्या है? जाना ही क्या है, समझा ही क्या है? ...यह जवान लडक़ी...इसे वह क्या जानता-समझता है?

तभी बिलरा की आवाज़ बाहर से आयी-बाबू, कैलसिया सो गयी है का? उसे उसके घर पहुँचा आऊँ।

और बौखलाकर मन्ने ने कहा-हाँ, सो गयी है। इसे जगाकर पहुँचा आ।

बिलरा अन्दर आया और बिना किसी झिझक के कैलसिया का हाथ पकडक़र उसे उठाने लगा-कैलसिया! कैलसिया! उठ, घर चल! ...अरे, तुझे नींद आ गयी, रे? ...उठ अभागी!-और उसने उसकी बाँह पकडक़र खींची।

कैलसिया कसमसाकर उठ बैठी और चिहाकर देखा।

-चल-चल, घर चल! तुझे कैसे नींद आ गयी, रे?-बिलरा बोला।

और कैलसिया को जैसे फिर कुछ याद आ गया, वह सहसा फूट-फूटकर रोने लगी।

-अरी, उठ री! बाबू कब से खड़े हैं!- बिलरा बोला।

कैलसिया ने आँख उठाकर देखा और उठ खड़ी हुई और एक क्षण ऐसे खड़ी रही, जैसे वह मन्ने से कोई एक बात सुनना चाहती हो और फिर आँचल से आँखें ढँकती दरवाजे से बाहर हो गयी।

वह चली गयी। कमरा जैसे बिलकुल सूना हो गया। मन्ने सोच रहा था और मन-ही-मन कट रहा था। उसने कुछ कहा क्यों नहीं? ...लेकिन वह कहता क्या? ...कुछ भी, एक बात, एक शब्द, कुछ भी। वह चली गयी, चली गयी! अब्बा चले गये, तो वह यहाँ क्यों रहती, कैसे रहती? बिलरा कुछ सोचकर ही तो उसे लिवा ले गया है। अब्बा रहते, तो क्या बिलरा बाहर से उसे घर पहुँचा आने की बात कहता? ...अब्बा से कैलसिया के क्या सम्बन्ध थे? कैलसिया क्या कुछ सोचकर यहाँ, आकर सो गयी थी? ...मन्ने ने अब्बा के जूतों की ओर देखा और सहसा उसे लगा, जैसे यह राम की खड़ाऊँ हो...अभी इस पर कैलसिया का सिर पड़ा था। उसने बड़े सम्मान से उन जूतों को उठाकर देखा और कमरे के कोने में पड़े पानदान और फ़र्शी के पास उन्हें रख दिया।

फिर चारपाई की ओर पलटा। लेकिन उस पर बैठने की उसे हिम्मत नहीं हुई। उसने चारपाई को, उसके सिरहाने बड़े सलीके से लपेटकर रखे बिस्तर को देखा। अब्बा रहते तो इस बिस्तर को फैलाकर इस पर सोये रहते। यह चारपाई, यह बिस्तर जैसे अब्बा के इन्तज़ार में हैं, लेकिन आज अब्बा नहीं आये, वह अब कभी नहीं आएँगे। क्या यह चारपाई और यह बिस्तर सदा इसी तरह पड़े-पड़े अब्बा का इन्तज़ार करते रहेंगे? ...अब्बा! आप रहते तो आज यहाँ क्या होता! और आप नहीं हैं, तो यहाँ क्या है? मैं यहाँ की हर चीज़ के लिए अजनबी हूँ, यहाँ की हर चीज़ मेरे लिए अज़नबी है। कोई किसी को नहीं पहचान रहा है। एक आपके बिना जैसे सब-कुछ बदल गया है। जो मैं कल था, आज न रहा। जो ये कल थे, आज न रहे। मैं आज अनाथ हूँ, ये आज अनाथ हैं। अब्बा! अब्बा! आप हमें इस तरह, इतनी जल्दी अचानक क्यों छोड़ गये? ...

लालटेन की रोशनी जैसे रो रही हो। चारपाई-बिस्तर जैसे कराह रहे हों। पानदान, फ़र्शी, जूते जैसे आह भर रहे हों। सुभाषितों से जैसे आँसू टपक रहे हों। मुसल्ला जैसे रो-रोकर कह रहा हो, भाई, अब मुझपर नमाज़ कौन पढ़ेगा? ...

और सहसा जाने कहाँ से एक आवाज़ आयी-तुम! तुम! तुम!

मन्ने ने आँखें पोंछी और लालटेन लिये आँगन में चला गया। घड़े को हिलाकर देखा। पानी भरा हुआ था। अब्बा पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़ते थे।

बधने में पानी उँड़ेलकर उसने वज़ू किया। मुसल्ला उतारकर उसने बरामदे की चौकी पर डाला और नमाज़ पढने लगा।

नमाज़ पढने के बाद लालटेन उठाकर वह फिर कमरे में दाखिल हुआ, तो लगा, जैसे सिरहाने का बिस्तर बोल उठा हो, अब मुझे फैलाओ। उसने झुककर बिस्तर फैलाया। तकिया उठाकर, चादर उठायी, तो लद से कोई चीज़ गिरी। उसे लगा, जैसे वह चीज़ बोल उठी हो, अब्बा तो इस तरह चादर नहीं उठाते थे कि मैं नीचे गिर पड़ूँ? ज़रा सम्हालकर!

उसने झुककर देखा, फ़र्श पर एक नोट बुक पड़ी थी। उसने चादर ज्यों-की-त्यों छोडक़र नोट बुक उठायी और लालटेन के पास बैठकर उसे देखने लगा।

पहले पृष्ठ पर बड़ी ही सुन्दर अरबी लिपि में लिखा था :

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

उसने अगला पृष्ठ खोला। उसी लिपि में लिखा हुआ था :

... कैलसिया के मुक़द्दमे का फैसला हो गया। ख़ुदा ने ठीक ही मुलज़िम को सज़ा दिलायी। मेरा फ़र्ज़ ख़त्म हुआ। अगर अपील होगी तो मैं मुक़द्दमे की पैरवी नहीं करूँगा। जो हो, अब उससे मेरा कोई मतलब नहीं। हाँ, कैलसिया की शादी अब ज़रूर और जल्दी कहीं करा देना चाहिए। ...

अगले पृष्ठ के बीच में उसी लिपि में यह शेर दर्ज था :

बिगड़ी है कुछ ऐसी कि बनाये नहीं बनती

इससे है ये ज़ाहिर कि यही हुक्मे ख़ुदा है

इस शेर को कई बार पढक़र उसने पन्ना पलटा, लेकिन आगे के सभी पन्ने खाली थे। वह फिर वही शेरवाला पन्ना पलटकर वह शेर पढने लगा :

बिगड़ी है कुछ ऐसी कि बनाये नहीं बनती

इससे है ये ज़ाहिर कि यही हुक्मे ख़ुदा है

क्या यह शेर अब्बा ने आज सुबह ही लिखा था?

-मन्ने बाबू, हमसे कुछ पूछ रहे हैं क्या?-बाहर से बाबू साहब की आवाज़ आयी।

-नहीं,-खड़े होते हुए मन्ने ने कहा-आप अन्दर आ जाइए, बाबू साहब। बाहर कितना अँधेरा है!

-यह अन्दर का अन्धकार है, मन्ने बाबू,-उठते हुए बाबू साहब ने कहा- इसमें कोई रोशनी काम नहीं करती!

दरवाजे पर बिलरा से बाबू साहब का पाँव टकरा गया, तो वे बोले-बिलरा, अभी तू बैठा ही है का, रे? अरे, तू का सती हो रहा है, बे? जा, सार में सो रह।

-बिलरा लौट आया क्या?-बाहर लालटेन दिखाता मन्ने बोला।

अन्दर आते हुए बाबू साहब बोले-यह कहीं गया था क्या?

-कैलसिया को पहुँचाने गया था,-मन्ने ने कहा।

-कैलसिया चली गयी? कब? मैं भरम गया था क्या?-बाबू साहब बोले-उसे आपने कुछ कहा?

-नहीं। ...

-नहीं? ओह! ...उसे...उसे... ख़ैर। ...यह बिस्तर किसने छुआ?-बिस्तर की ओर देखते हुए बाबू साहब ने शंकित होकर पूछा-आपने?

-जी हाँ, मैं ही फैला रहा था।-मन्ने ने अपराधी की तरह कहा।

-इसे एहतियात से छुइएगा। यह मियाँ का बिस्तर ही नहीं, एक फ़क़ीर की झोली भी है। जाने इसके सिरहाने उन्होंने क्या-क्या रखा हो, डाकखाने की पास बुक, रुपया-पैसा, जरुरी काग़ज़ात...

तीजा के बाद जब घर-बाहर की भीड़-भाड़ खत्म हो गयी, सर-सम्बन्धी चले गये, तो मन्ने के लिए सब ओर एक भयानक सन्नाटा छा गया। क्या करे, क्या न करे की परिस्थिति में उसका अनुभवहीन दिल-दिमाग़ छटपटाने लगा। खण्ड में कभी अब्बा की चारपाई पर वह बैठ जाता, कभी बाहर सहन में निकलकर, दोनों हाथ पीछे बाँधे, सिर लटकाये टहलने लगता, कभी अन्दर आँगन में उसी तरह घूमता। चेहरे पर परेशानी, आँखों में वहशत, मन-प्राण में अकुलाहट और होठों पर अब्बा का वही शेर :

बिगड़ी है कुछ ऐसी कि बनाये नहीं बनती...

जैसे अब्बा कुल सरमाया यह एक शेर ही उसके लिए छोड़ गये हों। इस शेर को वह कई बार गुनगुना चुका था, लेकिन कोई ऐसा मतलब वह इससे न निकाल पा रहा था, जिससे उसे कुछ सुकून हासिल होता, आगे का कोई रास्ता दिखाई पड़ता, कुछ रोशनी मिलती, कुछ साहस, कोई आशा बँधती। उसका खुदा में कोई विश्वास न था, 'हुक्मे खुदा' उसकी समझ के बाहर की बात थी। शेर की पहली पंक्ति ज़रूर एक माने रखती थी। ऐसी स्थिति जरूर आदमी की ज़िन्दगी में आ सकती है, लेकिन उसे 'हुक्मे खुदा' समझकर ओढ़-बिछाकर सो रहने के क्या माने? उस परिस्थिति से लडऩा, उस पर काबू पाना, उससे निकलने का संघर्ष करना आदमी का काम है, न कि उसे 'हुक्मे खुदा' मानकर हाथ-पाँव डाल देना? ...तो वह क्या करे? क्या करे? जो परिस्थिति उसके सामने हैं...

घर में तीन कुँवारी बहनें हैं, दो उससे बड़ी और एक उससे छोटी, दो शादी की उम्र पार कर चुकी हैं और तीसरी भी अपनी उम्र पर आ चुकी है। बुआ कहती हैं, अब्बा तीनों लड़कियों के दहेज के सामान बनवाकर रख गये हैं, जेवरात, बर्तन, कपड़े, फ़र्नीचर, सब। बस, लडक़े ठीक करके उनकी शादी कर देनी है। बाबू साहब कहते हैं, मियाँ ने बहुत कोशिश की, लेकिन उनके मन-लायक कोई एक भी लडक़ा न मिला। रिश्तेदारियों में वे लड़कियों को न देना चाहते थे। वे कहते थे, ऐसा करने से वे उनकी ज़मीन-जायदाद नोच-खसोट लेंगे, मन्ने के लिए कुछ भी न बचेगा, उल्टे उसे तरह तरह की परेशानियाँ उठानी पड़ेंगी, लोग उसकी ज़िन्दगी तबाह करके छोड़ेंगे। वे चाहते थे कि ख़ुद कमाते-खाते लडक़े मिलते, जिन्हें उनकी ज़मीन-जायदाद का कोई लोभ न होता। उन्होंने बहुत कोशिश की, लेकिन वैसे लडक़े मिले नहीं और लड़कियाँ अभी तक बिनब्याही रह गयीं। लोग भुनभुनाते रहते, ऐसी जवान लड़कियाँ घर में डाले हुए हैं! रिश्तेदार अलग उनसे नाराज़ थे। लेकिन मियाँ किसी की किसी बात की परवाह न करते थे। ...वे अपने मन के राजा थे, अपने मन की करते थे। ...अब न वो रहे, न वो बातें रहीं, उनके साथ उनकी बातें गयीं।

सियाहा से पता चलता है कि उनके पास क़रीब दो सौ बीघा ज़मीन है, जिससे क़रीब चार हज़ार रुपये सालाना लगान वसूल होता है और गाँव में उनकी तीन आने ज़मींदारी है। ...दो साधारण बैल हैं। अपनी भी कुछ खेती होती है, जिससे घर के खर्च का अनाज निकल आता है। तीन पट्टीदार हैं, जिनमें ज़नाना घर बँटा हुआ है। बुआ कहती हैं, वे उन्हें एक आँख नहीं भाते, उनकी हालत अच्छी नहीं है, बेच-खुचकर अपना बहुत-कुछ

खा चुके हैं, अब मन्ने की ज़मीन-जायदाद पर उनकी आँखें गड़ी हैं। उनसे बहुत होशियार रहना चाहिए। उनमें जुब्ली सबसे ज़्यादा ख़तरनाक, मक्कार और डाही है।

नक़द के नाम पर डाकखाने की पासबुक में क़रीब एक हज़ार रुपये जमा हैं, बस।

मन्ने सोचता था, (मन्ने ही क्या सारा गाँव ही सोचता था) अब्बा बहुत बड़े आदमी हैं, उनके पास लाखों रुपया है। गाँव तो अब भी वही सोचेगा, लेकिन आज मन्ने को मालूम हो गया कि वह कितने पानी में है। उसे आश्चर्य हुआ कि अब्बा के पास इतना ही रुपया था। बाबू साहब कहते हैं, उनके पास रुपया आता कहाँ से? दादा के ज़माने में जब पट्टीदारों में झगड़ा हुआ था और अलग्योझा हुआ था, तो नक़द के नाम पर दादा को कुछ भी न मिला था। जुब्ली के दादा का ही उस समय चिराग़ जलता था। मन्ने के दादा सीधे और शरीफ़ आदमी थे, ज़मींदारी से पैसा कमाना न जानते थे। लगान से जो चार-एक हज़ार की सालाना आमदनी होती थी, वह ख़र्च में ही पार हो जाती थी। नक़द के नाम पर उन्होंने मियाँ के लिए कुछ भी न छोड़ा था। मियाँ भी कुछ वैसे ही निकले। ज़मींदारी का फ़ायदा उठाकर जुब्ली आज अपना सारा ख़र्चा निकाल लेता है, लेकिन मियाँ के लिए ज़मींदारी से एक पैसा भी कमाना हराम था। पैसा कहाँ से जमा होता? बँधी-बँधायी जो आमदनी है, उससे तो खर्चा चलना ही मुश्किल है।

मन्ने ने पूछा-बाबू साहब, ऐसा भी तो हो सकता है कि रुपये की कमी के ही कारण अब्बा मेरी बहनों की शादी न कर सके?

-हो सकता है,-बाबू साहब ने कहा-ऐसा भी हो सकता है। लेकिन ज़रूरत पड़ने पर उन्हें रुपया मिल सकता है। उनका मान बहुत था। जवार के कुछ बहुत ही बड़े आदमियों के यहाँ उनका रसूख़ था। यही कैलसिया के मुक़द्दमे की बात ले लीजिए। इसमें मामूली ख़र्चा तो न हुआ होगा। लेकिन ख़र्च के डर से वे किसी ज़रूरी मामले में पीछे हटनेवाले आदमी न थे, वे किसी-न-किसी तरह इन्तज़ाम कर ही लेते थे।

-लेकिन मैं क्या करूँ?-परेशान होकर मन्ने बोला-मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है। तीन-तीन बहनों की शादी करनी है। अगर मैं पढ़ूँ तो मेरे खर्चे का सवाल है और यह भी सवाल है कि जगह-जायदाद की देख-भाल कौन करेगा, मैं तो बाहर रहूँगा?

-जहाँ तक आपकी पढ़ाई के ख़र्च का सवाल है, मियाँ ने उसका पक्का इन्तज़ाम कर रखा है। उनकी यह मंशा थी कि आप जहाँ तक पढ़ सकें, पढ़ें। आपकी पढ़ाई में कभी कोई ख़लल न पड़ेगा। आप सियाहा ग़ौर से देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि आपके हर महीने के खर्च के लिए एक या दो मातबर असामी छोड़े गये हैं। वे पहली तारीख़ को

आप ही मियाँ के पास पैसे दे जाते थे और मियाँ आपको साठ रुपये का मनीआर्डर कर देते थे। सो, इस सवाल के बारे में आपको चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। दूसरा सवाल लड़कियों की शादी का है। बुआ ने आपको बताया ही होगा कि मियाँ दहेज का सारा सामान कर गये हैं। नक़द जो खर्च होगा, उसका इन्तज़ाम भी हो जायगा। मैं हूँ न! आप उसकी चिन्ता न करें, वक़्त आने पर देखा जायगा और यही नहीं, अभी से उसके लिए इन्तज़ाम किया जायगा। मुमकिन हो तो बहुत सादे ढंग से ये शादियाँ की जाएँगी। मियाँ की बात मियाँ के साथ गयी। वे तो ये शादियाँ बड़ी शान से करना चाहते थे। कहते थे, ज़रूरत पड़ेगी, तो कुछ ज़मीन भी बेंच देंगे, उनका जो हिस्सा है, उन पर ही खर्च कर देंगे। वे जो चाहते, कर सकते थे, बड़े दिलवाले आदमी थे। लेकिन आप तो वह-सब नहीं कर सकते।

-और यहाँ की देख-भाल कैसे होगी? जुब्ली मियाँ कह रहे हैं, उन पर सब छोड़ दूँ। बुआ का कहना है, वह मक्कार आदमी है, सब हड़प जायगा। उस पर कुछ भी नहीं छोड़ा जा सकता। वह तो ताक लगाये बैठा है। ...बुआ पूछती हैं, क्या तुम्हारा पढना बहुत ज़रूरी है? उनका कहना है कि अब तुम घर-बार सम्हालो। तुम्हारे दादा और अब्बा ने तो स्कूल का मुँह ही नहीं देखा था। उन्हें डर है कि मेरे यहाँ न रहने से सब बरबाद हो जायगा। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ। ...बाबू साहब, इस समय आपके सिवा मुझे अपना कोई दिखाई नहीं देता। अब आप ही मेरे लिए कोई रास्ता बताइए। अब्बा की जगह मैं आप ही को जानता-समझता हूँ । मुझे और किसी पर न भरोसा है, न विश्वास है। मुझे अभी कुछ अनुभव नहीं, लेकिन मैं इतना जानता हूँ कि बुआ जो कहती हैं, वह गलत नहीं है। जुब्ली मियाँ पर मैं कुछ भी नहीं छोड़ सकता। इस हालत में यही तो हो सकता है कि मुझे अपनी पढ़ाई छोडनी पड़े। बाबू साहब, इसका मुझे जीवन-भर दु:ख रहेगा। मैं पढ़ाई नहीं छोडना चाहता।

-आप पढ़ाई मत छोड़िए!-बाबू साहब ने दृढ़ स्वर में कहा-मियाँ कहते थे कि आपको ऊँची-से-ऊँची तालीम दिलाएँगे और आपको इस क़ाबिल बना देंगे कि आप चाहें तो कहीं भी आज़ाद ज़िन्दगी बसर कर सकें। इस गाँव के गन्दे माहौल से वे आपको दूर देखना चाहते थे। वे कहते थे कि आप बहुत बड़े अदीब बनेंगे और उनके ख़ानदान का नाम रोशन करेंगे। किसी रिसाले में आपकी कोई चीज़ निकली थी, उसे पढक़र उन्होंने मुझे सुनाया था। उस वक़्त उनका चेहरा देखते बनता था। मारे ख़ुशी के वे फूले न समा रहे थे।

-लेकिन यहाँ के इन्तज़ाम का क्या होगा?-मन्ने ने पूछा।

-यहाँ का इन्तज़ाम कोई बड़ी बात नहीं है,-बाबू साहब ने कहा-आप उसकी फ़िक्र न करें। फ़सल कटने के बाद, गर्मियों का वक़्त ही वर-वसूली और बर बन्दोबस्त का होता है। उस समय आपकी गर्मियों की छुट्टी होती ही है। बाक़ी समय जो थोड़ा-बहुत छिट-पुट काम होगा, उसके लिए हम हैं न।

मन्ने की समस्या हल हो गयी। एक कैलसिया की बात रह गयी। अब्बा ने लिखा है, उसकी शादी ज़रूर करा देनी चाहिए। उसने चाहा कि उसकी बात भी छेड़े, लेकिन वह हिचक गया। कैलसिया जो उसके सामने खण्ड से चली गयी थी, फिर कभी न आयी थी। जाने वह क्या सोचती है। शायद सोचती हो कि मियाँ न रहे तो उसका यहाँ कौन रहा? ...उसने सोचा, शायद बाबू साहब ही कुछ कहें, लेकिन उन्होंने भी कुछ न कहा, तब वह भी टाल गया।

बाबू साहब बोले-एक बार असामियों को अपने सामने बुला लें, जो कुछ कहना-सुनना हो, उनसे कह दें और उन्हें पर-पहचान लें। आगे उनसे बराबर का वास्ता है। बिलरा से आप कह दें, वह एक-एक को जानता है, सबको इकठ्ठा कर देगा।

उस दिन सुबह ही से असामी आना शुरू हुए। देखते-देखते सारा खण्ड भीतर-बाहर भर गया। चेहरे उसे कुछ पहचाने-से लगे, लेकिन उनमें से कभी किसी से उसने कोई बात की हो, उसे याद नहीं। उनमें ज़्यादातर कोइरी, भर और चमार थे। देह पर कपड़े के नाम पर एक मैली-कुचैली धोती, बाक़ी सब नंग-धड़ंग, काले-कलूटे। मियाँ की प्रशंसा में सबके मुँह से शब्द झर रहे थे। सभी दुखी थे।

मन्ने अब्बा की चारपाई पर आगे सियाहा खोले बैठा था। एक-एक का नाम पढक़र अपने पास बुलाता। वह आकर सिर झुकाकर सलाम करता। मन्ने सिर उठाकर देखता। एक-आध बात करता और कहता, अब अब्बा की जगह बाबू साहब हैं, वे जैसा कहें, करना पड़ेगा।

असामी सिर झुकाकर कहता-जैसा सरकार का हुकुम!

मन्ने कहता-जाओ,-और दूसरा नाम पुकारता।

सभी एक तरह के हैं, एक ही तरह की बातें करते हैं। इनमें से किसी एक को ढूँढ़ निकालना मुश्किल है।

लेकिन यह ख़त्म हो जाने के बाद बाबू साहब ने कहा-इनमें एक-से-एक भरे पड़े हैं! सब तरह के इंसान आपको मिल जाएँगे, एक-से-एक बढक़र शरीफ और एक-से-एक

बढक़र बदमाश। मियाँ आदमी पहचाननेवाले थे। कभी-कभी इनकी बड़ी ही दिलचस्प कहानियाँ सुनाते थे।

मन्ने ने बताया-अब्बा ने सियाहा में असामियों के बारे में भी लिखा है, कि कौन कैसा है, उसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।

-अच्छा?

-जी हाँ! और उन्होंने ईद, मुहर्रम वग़ैरा त्योहारों के लिए भी असामी छोड़ रखे हैं।

-उनका सब इन्तज़ाम ही ऐसा था, पक्के उसूल के आदमी थे, आप एक पर्चा बनाकर, हिन्दी में हमें लिखकर दे दें।

-बहुत अच्छा।

-गर्मियों की छुट्टी में मुंशीजी को बुलाएँगे। वे आपकी जगह-ज़मीन की पड़ताल करा देंगे। कहाँ आपका कौन-सा खेत है, कौन सी बाग-बावली है, सब आपको जान लेना चाहिए। यह दुनियाँ बड़ी अजीब है, कब, कौन मौका पाकर कहाँ दबा बैठेगा, कोई नहीं जानता।

और मन्ने पढऩे स्कूल चला गया। बाबू साहब उसके पीछे फ़कीर बन गये। अपने घर से, काम-काज से जैसे उनका सब नाता ही टूट गया। वे मन्ने के ही होकर रह गये। वे आते और खण्ड में उसी चारपाई पर बैठते, जो ज़रूरी काम होते, निबटाते। बिलरा को खेती के बारे में सहेजते। बुआ से घर के बारे में पूछवाते, जब जिस चीज़ की घर में ज़रूरत पड़ती, मँगवाकर पहुँचवाते। घर में सबके मुँह पर बाबू साहब-बाबू साहब, बाहर सबके मुँह पर बाबू साहब-बाबू साहब! जब कोई ज़रूरत पड़ती, बाबू साहब!

मन्ने अब्बा को बहुत कम ख़त लिखता था, लेकिन बाबू साहब को वह बराबर लिखता। देखने में मन्ने की समस्या हल हो गयी थी, लेकिन मन्ने की आँखें जिस स्थिति में खुली थीं, उसकी मानसिक व्याकुलता की कोई सीमा न थी। बाबू साहब ने उसे बहुत समझया कि वह कोई चिन्ता न करे, बस मन लगाकर पढ़े। कभी यह न सोचे कि उसके अब्बा नहीं है। वह सब-कुछ सम्हाल लेंगे। लेकिन चिन्ता ऐसी थी कि उसका पीछा ही न छोड़ रही थी। तीन-तीन बहनों की शादी करनी है और घर में रुपया नहीं। साल में क़रीब चार हज़ार की आमदनी, सब ख़र्च, घर का, उसकी पढ़ाई का, इज़्जत आबरू का, बीमारी-हिमारी का...कैसे क्या होगा? उसे चिन्ता न होती तो क्या होता?

पढ़ने बैठता है तो उसका मन भटक जाता है। वह घर के बारे में ही सोचने लगता है। कैसे क्या होगा? बेचारे बाबू साहब क्या कर सकते हैं? उसकी वे क्या मदद कर सकते है, कैसे मदद कर सकते हैं?

बाबू साहब हर चिठ्ठी में ताक़ीद करते कि वह कोई चिन्ता न करे। इस समय उसका केवल एक कत्र्तव्य है और वह है, पढना़। वह निश्चिन्त होकर पढ़े। लेकिन उससे पढ़ा न जाता।

मुन्नी उसकी यह हालत देखता, तो मन-ही-मन कुढ़ता। पूछने पर मन्ने उसे कुछ बताता नहीं। मुन्नी की समझ में कुछ भी न आता। वह बाबू साहब को चिठ्ठी लिखता कि मन्ने बहुत उदास रहता है, पढ़ने में उसका जी ही नहीं लगता। बाबू साहब फिर वैसी ही चिठ्ठी लिखते। लेकिन अपने को मन्ने समझाने में असमर्थ था। अब्बा का शेर वह बराबर गुनगुनाता रहता :

बिगड़ी है कुछ ऐसी कि बनाये नहीं बनती...

उस दिन उसे इस शेर के कोई माने न मिलते थे और उसने सोचा था कि यह क्या कि परिस्थिति को हुक्मे ख़ुदा समझकर आदमी अपना हाथ-पाँव तोडक़र बैठ जाय? ...लेकिन आज जैसे इस शेर का मतलब समझ में आ गया हो। वह सोचता, अब्बा ठीक ही कह गये हैं:

बिगड़ी है कुछ ऐसी कि बनाये नहीं बनती...

और इम्तिहान में वह फ़ेल हो गया। उसने अपनी हालत ऐसी बना ली कि लोग देखते और तरस खाते।

बाबू साहब मन-ही-मन कुढ़ते। मुन्नी मन-ही-मन दुखी रहता। लेकिन कोई कुछ कर न पा रहा था। मन्ने ऐसा ख़ामोश, ऐसा निराश, ऐसा पस्त हिम्मत हो गया था कि वह किसी से कोई बात ही न करता था। ठण्डी साँसें भरता, सिर के बाल नोचता, फटी-फटी आँखों से देखता और वह शेर पढ़ता :

बिगड़ी है कुछ ऐसी कि बनाये नहीं बनती...

आख़िर बाबू साहब से जब न सहा गया, तो उन्होंने एक दिन कहा-यह आपको क्या हो गया है? आप मुझसे तो बताइए!- और उठकर उन्होंने खण्ड का दरवाजा बन्द कर दिया।

मन्ने सिर झुकाये बैठा रहा।

-बोलिए, आपको क्या तकलीफ़ है?-बाबू साहब ने कहा।

मन्ने ने एक बार फटी-फटी आँखों से उनकी ओर देखा और सिर झुका लिया।

बाबू साहब कडक़कर बोले-तो सुनिए! इसका मतलब यह है कि मैं आपका कोई नहीं, आपको मेरी बातों पर विश्वास नहीं!

-बाबू साहब!-आख़िर मन्ने का बोल फूटा-ऐसा मत कहिए?

-ऐसा न कहूँ तो कैसा कहूँ? आपकी हालत देखकर सारा गाँव हँसता है और मेरा ख़ून सूखता है। आपसे मैं आज सब-कुछ साफ़-साफ़ कह लेना चाहता हूँ! आप मुझसे कहीं ज़्यादा पढ़े-लिखे और समझदार हैं। आप अब कोई बच्चे नहीं, जो किसी बात को समझ नहीं सकते। मैंने आपसे कितनी बार कहा कि आप कोई भी चिन्ता न करें, पढ़ाई पर ध्यान दें, लेकिन आपने अपने को पागल बना लिया और फ़ेल हो गये। इसका क्या मतलब है? मैंने आपसे कहा कि यह न समझिए कि अब्बा न रहे, मैं हूँ। आप सारी ज़िम्मेदारी मुझपर छोड़ दीजिए और जैसे पहले रहते-सहते थे, रहे-सहें। लेकिन आप पर मेरी बातों का कोई असर नहीं हुआ। इसका मतलब यही तो हुआ कि आपने मेरी किसी बात पर भी विश्वास नहीं किया?

-नहीं, बाबू साहब! आप ऐसा मत कहिए!-मन्ने रोकर बोला-आप सब जानते हुए...

-लेकिन आप यह क्यों नहीं सोचते कि आपके चिन्ता करने से तो दूर, आपके जान देने से भी कोई समस्या हल नहीं हो सकती? ...बाबू, यह ज़िन्दगी बड़ी सख़्तगीर है। परिस्थितियों के हवाले अगर आपने अपने को छोड़ दिया, तो गये! परिस्थितियों पर क़ाबू पाने का नाम ज़िन्दगी है। धैर्य से, शान्ति से, ठण्डे दिल से, हिम्मत से लड़ते रहने का नाम ज़िन्दगी है। मियाँ की यही सबसे बड़ी खूबी थी। वे किस स्थिति में हैं, कभी किसी को मालूम न हो सका। उनका कहना था, बाबू साहब, अपनी कमजोरी का इज़हार आपकी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी हार है। घर में आप चना भुनाकर खाइए, लेकिन इस एहतियात से कि उसकी गन्ध पड़ोस तक न जाय। ...और आज क्या हो रहा है? ताली बजने में अब कितनी देर रह गयी है? आप कुछ सोचते हैं? अक्लमन्द के लिए इशारा काफ़ी है!-और बाबू साहब का सिर रंज से झुक गया।

-बाबू साहब, मैं क्या करूँ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता...

-इस तरह आपकी समझ में कुछ भी नहीं आएगा। आप घुल-घुलकर जान भी दे देंगे, तो भी नहीं आएगा। इस तरह समझने की यह बात ही नहीं है। लेकिन आपको मेरी बात तो समझनी चाहिए। मैं क्षत्री हूँ, एक बार मेरे मुँह से जो बात निकल गयी, उसके पीछे मेरी जान भी चली जाय, तो चिन्ता नहीं। मैंने आप से कहा था कि आप सारी अपनी ज़िम्मेदारी मुझ पर छोड़ दीजिए, इसका मतलब समझना क्या बहुत मुश्किल है? अगर मुश्किल है तो एक बार फिर सुन लीजिए! मैं क्षत्री हूँ और कहता हूँ कि जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, आप पर कोई ज़रब न आने दूँगा! आपकी हर मुसीबत को मैं झेलूँगा! मियाँ के ख़ानदान पर कोई उँगली उठाये, जब तक मेरे तन में जान है, बर्दाश्त न कर सकूँगा! आप मुझ पर भरोसा रखें और यह सूरत उतार फेंके! मियाँ की आबरू मेरी आबरू है! आप मुझे जानते नहीं, मियाँ मुझे जानते थे :

रघुकुल रीति सदा चलि आई।

प्रान जाहि बरु बचन न जाई।।

उठिए! मुझे मालूम न था कि आप इस उम्र में भी ऐसे बच्चे है। मुझे ख़ुद ही कभी यह सब कहना पड़ेगा, मैंने कब सोचा था! ख़ैर।

प्रेमी को हँसी आ गयी। मन की सारी खिन्नता धुल गयी थी। वह मेज़ से उठा और कपड़े पहनकर रेस्तराँ के लिए निकला। दरवाज़ा बन्द कर सडक़ पर आया, तो सन्नाटा छा चुका था। हॉस्टल की कुछ खिड़कियों से रोशनी झाँक रही थी। कॉलेज के फाटक को बन्द कर, गोरखा चौकीदार ड्यूटी पर खड़ा हो फक-फक बीड़ी खींच रहा था। बग़ल की फिरकी घुमाकर वह अन्दर घुसा। वह सोच रहा था, सचमुच उस समय वह कितना कच्चा, कितना भावुक, कितना कमजोर था! बाबू साहब ने उसे न सम्हाला होता, तो उसकी नाव किस घाट लगती। जिस स्थिति को देखकर ही उसके हाथ-पाँव फूल गये थे, उसका मुक़ाबिला वह क्या करता। लेकिन बाबू साहब ने किस हिम्मत से उसकी एक-एक समस्या को हल कर दिया! जैसे वे जानते हों कि जब तक ये समस्याएँ उसे घूरती रहेंगी, उसका दिमाग़ ठिकाने नहीं रह सकता।

अगली गर्मी आते-न-आते उन्होंने दो बहनों के रिश्ते तय कर दिये। लडक़े रिश्तेदारियों के ही थे। कोई बहुत अच्छे न थे, लेकिन यह मीन-मेख निकालने का मौक़ा न था। उन्होंने कहा, आँधी में घाट नहीं देखा जाता, जहाँ भी सम्भव हो, नाव को किनारे लगा दिया जाता है।

लेकिन जुब्ली से यह भी न देखा गया। मन्ने से जला-भुना तो वह बैठा ही था। शादी के मामले में भी मन्ने ने जब उससे कोई राय-बात न की और न कोई सहायता ही माँगी, तो आग में जैसे घी पड़ गया। उसका ख़याल था कि बाबू साहब भले ही और सब काम सम्हाल लें, लेकिन निकाह-शादी ऐसे काम हैं, जो भाई-बिरादरी की मदद के बिना नहीं होते। उसने सोच रखा था कि ऐसे अवसर पर ही मन्ने को वह अपने चंगुल में फँसाएगा। लेकिन जब बात बहुत आगे बढ़ गयी और मन्ने उसके पास एक बार भी न आया, तो उसे लगा, जैसे उसके हाथ का तोता ही उड़ा जा रहा हो। उसने अब दौड़-धूप शुरू कर दी। जहाँ रिश्तेदारियाँ लगी थीं, वहाँ जाकर पहले तो उसने जड़ ही मार देने की कोशिश की। लेकिन वहाँ के लोग तो बहुत पहले ही से इन रिश्तों के लिए लालायित थे, अब सुअवसर आने पर किसी के बहकावे में न आ सकते थे। जुब्ली वहाँ से अपना-सा मुँह लेकर वापस आया, तो उसने दूसरा पैंतरा भाँजा, बिरादरी वालों को भडक़ा दिया। बिरादरी का सरगना तो वह था ही! निकाह की तारीख़ नज़दीक आ गयी, तो उसने बिरादरी की एक गुप्त बैठक बुलायी और लोगों से कहा कि चूँकि मन्ने ने ये रिश्ते बिना उनकी राय-बात के तय किये हैं और रिवाज के मुताबिक़ उन्हें बटोरकर इत्तिला देने की भी तकलीफ़ नहीं उठायी, इसलिए बिरादरी को वे रिश्ते मंजूर नहीं। बिरादरी को भी यह बात खली कि एक हिन्दू के चक्कर में पडक़र मन्ने बिरादरी को कुछ समझ ही नहीं रहा है, यह तो सरासर उनका अपना अपमान है। इसे वे बर्दाश्त नहीं कर सकते। इस मौक़े पर वे ज़रूर तानेंगे।

औरतों से होकर जब बात बुआ तक पहुँची, तो उन्होंने अपना सिर पीट लिया। उन्होंने तुरन्त मन्ने को बुलाया। बोलीं-बेटा, यह तुमने क्या किया? कुल एक हफ्ता बारात आने को रह गया, दो-दो बारातें साथ आ रही हैं, और तुमने अभी तक बिरादरी को इत्तिला तक नहीं दी। लोग हमारी नाक काटने को तैयार बैठे हैं। वे तान देंगे तो कैसे क्या होगा? जब से यह सुना है, हमारे तो हाथ-पाँव फूल रहे हैं!

बेवकूफ़ की तरह उनका मुँह तकते हुए मन्ने ने कहा-हमें यह सब कहाँ मालूम था? तुम्हें बताना चाहिए था? अब क्या किया जाय?

-तुम अभी जाकर जुब्ली से बात करो। शाम को बिटोर करो और उन्हें इत्तिला दो और उनकी मदद माँगो। सब काम छोडक़र यह काम करो! ओफ़! यहाँ लड़कियाँ माँझे में बैठी हैं, उधर बिरादरी तनी बैठी है! औरतों ने भी हमारे यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया है! कैसे क्या होगा? यह बड़ी भारी ग़लती हो गयी!

मन्ने ने बाबू साहब से यह-सब कहा, तो उन्होंने कहा-बुआ ठीक कह रही है। बिरादरी को ज़रूर इत्तिला देनी चाहिए थी। ...लेकिन एक बात मैंने और सुनी हैं। जुब्ली मियाँ हमारे रिश्तेदारों के यहाँ भी दौड़-धूप आये हैं। उन्होंने रिश्ते काटने की भी पूरी कोशिश की है। इससे मालूम होता है, दाल में कुछ काला ज़रूर है। वे आपके पट्टीदार हैं, शायद आपको नीचा दिखाना चाहते हैं। इसलिए ज़रा चौकन्ना होकर काम करने की ज़रूरत है। आप शाम की बटोर कीजिए। कहने को तो न रह जाय कि आपने जानकर कोई परवाह न की।

-आप भी बटोर में रहेंगे न?-मन्ने ने चिन्तित होकर कहा।

-कहाँ-कहाँ मैं आपके साथ रहूँगा? बिरादरी की बटोर में बाहर का आदमी नहीं रहता। आपको घबराने की ज़रूरत नहीं । जो होगा, देखा जायगा। लेकिन आप अपना सम्मान बनाये रखें। अनुचित बात पर आपको झुकाने की कोई कोशिश करे, तो हरग़िज न झुकें। जुब्ली मियाँ की चाल समझकर ही अपना मुहरा उठाएँ।

शाम को बटोर हुई। मन्ने को बड़ा ताज्जुब हुआ कि बात इस तरह शुरू हुई, जैसे वह कोई अपराधी हो और लोग उसे सज़ा देने के लिए इकठ्ठा हुए हों।

उसने कहा-मैं लडक़ा हूँ। मुझे रस्म-रिवाज कुछ मालूम नहीं था। अब मालूम हुआ है तो यह बटोर इत्तिला देने के लिए बुलायी है।

इमाम की तरह जुब्ली बोला-तुम इतने बड़े हो गये। ज़िले के बड़े स्कूल में पढ़ते हो। यह कैसे समझा जा सकता है कि ये मामूली रस्म-रिवाज भी तुम्हें मालूम न हों?

एक दूसरे ने ताव में आकर ताना मारा-अरे साहब, बड़े आदमी के लडक़े हैं, इन्हें बिरादरी की क्या परवाह!

एक तीसरे ने रद्दा जमाया-परवाह न थी, तो यह बटोर क्यों की? ये अपने घर में खुश, हम अपने घर में ख़ुश!

एक चौथे ने कहा-नये ज़माने के आदमी हैं, सब रस्म-रिवाज तोडऩा चाहते हैं!

एक पाँचवा बोला-तोडऩा चाहते हैं, तो तोड़ें न! हम देख लेंगे, ये शादियाँ कैसे होती हैं!

और फिर चारों ओर काँव-काँव होने लगी। मन्ने का दिमाग़ भन्ना उठा। उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा था। उसके जी आया कि वह वहाँ से भाग खड़ा हो। कैसे जाहिलों

के बीच वह आ पड़ा। कोई उसकी बात समझने की कोशिश नहीं करता, सब अपनी ही हाँके जा रहे हैं, उसे बोलने भी नहीं देते।

आख़िर जुब्ली ने शान्ति स्थापित की और जज की तरह कहा-मन्ने, लोग जो कह रहे हैं, ठीक ही कह रहे हैं। बिरादरी के बाहर निजात नहीं। तुमने जो बिरादरी की तौहीन की है, वह कोई मामूली ग़लती नहीं। तुम्हें लडक़ा समझकर, अपना समझकर मैं यही कहना चाहता हूँ कि तुम बिरादरी से अपनी ग़लती के लिए माफ़ी माँग लो। मैं बिरादरी से मिन्नत करूँगा कि वह इस बार तुम्हें माफ़ कर दे। ग़लती चाहे जितनी बड़ी हो, लेकिन यह तुम्हारी पहली ग़लती है और माफ़ी के क़ाबिल है।

इतना-सब हो जाने के बाद जुब्ली का यह फैसला सुनकर मन्ने को जैसे आग ही लग गयी। वह भडक़ उठा-भाई साहब, आप मेरे बड़े भाई और घर के बुज़ुर्ग हैं। क्या आपका कोई फ़र्ज नहीं था? मुझे कोई बात मालूम न हो तो क्या आपको बताना न चाहिए था? लेकिन नहीं, आप मुझे क्यों बताते? आपको तो मुझे नीचा दिखाने की साज़िश से ही फ़ुरशत नहीं थी। आपकी एक-एक हरकत का मुझे पता लग गया है, और मुझे बेहद रंज है कि आप भाई की तरह मेरी मदद नहीं, दुश्मन की तरह मुझे ज़िच देना चाहते हैं। लेकिन यह होने का नहीं, आप यह समझ रखें! आप बिरादरी को ही नहीं, सारी दुनियाँ को भडक़ाकर मेरे खिलाफ़ कर सकते हैं, लेकिन मैं किसी भी ग़ैर-इन्साफ़ी के सामने अपना सिर झुका दूँगा, यह बात आप अपने ख़ाबो-ख़याल में न लाएँ! मैं कहना चाहता हूँ कि मेरा कोई जुर्म नहीं और इसलिए मेरी ओर से माफ़ी माँगने का कोई सवाल ही नहीं उठता। भाई साहब की इस ग़ैरइंसाफ़ी के सामने सिर झुकाने से मैं कतई मजबूर हूँ! आगे आप लोगों की जो मर्ज़ी।

तीन बित्ते के उस लौंडे की यह बात सुनकर तो बिरादरी को जैसे साँप सूँघ गया। मारे ग़ुस्से के जुब्ली का चेहरा तमतमा रहा था। और सब उल्लू की तरह उसी का मुँह ताक रहे थे। जुब्ली का ख़याल था कि उसके इस नाटक से मन्ने पर उसका रोब जम जायगा, उसे मालूम हो जायगा कि उसका क्या स्थान है और उसके बिना मन्ने का कोई काम नहीं हो सकता। लेकिन मन्ने ने तो जैसे उसकी बिसात ही उलट दी। आख़िर उसने कहा-अगर तुम मजबूर हो तो बिरादरी भी मजबूर हैं! आज से बिरादरी अपने सब ताल्लुक़ात तुमसे क़ता करती है!

थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। लोगों को यह न मालूम था कि बात यहाँ तक पहुँच जायगी। आख़िर मन्ने भी बिरादरी का मातबर आदमी था, बल्कि सबसे बड़ा ज़मींदार था।

मौलवी साहब ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा, खोदनी से कान खुजलाये और बोले-बिरादरी और मुखिया का फैसला सर-आँखों पर। लेकिन एक अर्ज़ मेरी है। आप लोग तो जानते ही हैं कि मन्ने बाबू मेरे शागिर्द हैं और इनके घर से मेरे दूसरी तरह के भी ताल्लुक़ात हैं। इसलिए मेरी अर्ज़ थी कि आप लोग मुझे इज़ाजत दें कि कम-से-कम इस मौक़े पर मैं मन्ने बाबू के साथ रह सकूँ?

एक दूसरा बोला-मैं भी इसी तरह की इजाज़त का ख़ाहिशमन्द हूँ।

एक तीसरा बोलने को हुआ, तो जुब्ली बौखला उठा। वह चिल्लाकर बोला-बिरादरी का फैसला हमने सुना दिया! इसके ख़िलाफ जो भी कोई कुछ करेगा, अपनी ज़िम्मेदारी पर करेगा!-और वह उठ खड़ा हुआ।

बुआ को यह-सब मालूम हुआ, तो वह रोने लगीं। बोलीं-बाबू, तुमने यह क्या किया? अपने ही लोग शादी में शामिल न होंगे, तो शादी कैसी ? यह जुब्ली अपने ही जिस्म का हिस्सा है, अपना ही ख़ून है। लोग सुनेंगे तो मुँह पर थूकेंगे कि शादी के मौक़े पर तो दुश्मनों को भी पूछा जाता है और यहाँ...

मन्ने को यह सुनकर गुस्सा आ गया। बोला-इतना ही वह प्यारा है, तो, बुआ, तुम भी उसके साथ चली जाओ, मुझे छोड़ दो!

बुआ सन्नाटे में आ गयीं। मन्ने यह क्या बोल रहा है? ऐसे मौक़े पर बुआ उसका साथ छोड़ दें? वह माथा पीटती हुई बोली-बेटा, तू मेरी बात नहीं समझता। ऐसे मौक़े पर आदमी को झुककर ही रहना चाहिए। ब्याह-शादी अकेले कर लेना किसी के बूते की बात नहीं। हज़ार काम होते हैं, उन्हें करने के लिए हज़ार हाथ होने चाहिए!

-देखो, कैसे होता है!-मन्ने बोला-तुम चुपचाप देखो!

-लेकिन, बाबू...

-कुछ नहीं! ग़ैर इन्साफी के सामने मैं सिर नहीं झुका सकता! किसी मूज़ी के हाथ का खिलौना बनकर मैं ज़िन्दा नहीं रहना चाहता!-और वह घर के बाहर हो गया।

खण्ड में चौकी पर बैठे मौलवी साहब लिफ़ाफों में दावतनामे भर रहे थे। बाबू साहब गम्भीर होकर चारपाई पर बैठ गये थे। उन्होंने मन्ने से कहा-आलमारी में पतों की बही होगी, निकाल दीजिए और स्कूल के अपने साथियों के पते भी मौलवी साहब को लिखा दीजिए।

मन्ने समझ गया कि मौलवी साहब से बाबू साहब को सब मालूम हो गया है। वह उनका मँुह देखने लगा, तो बाबू साहब फिर बोले-आपने बिलकुल ठीक किया। अपने चार-छै साथियों को तुरन्त बुला लीजिए। सब हो जायगा।

-हो कैसे नहीं जायगा?-मौलवी साहब बोले-किसी का कोई काम रुकता है!

बही निकालकर वह पते बोलने लगा। मौलवी साहब लिखने लगे।

अचानक एक पते पर मन्ने रुक गया। बोला-बाबू साहब, यह उर्वशी कौन है?

-यह एक तवायफ़ है। मियाँ कभी-कभी उसके यहाँ जाया करते थे। ख़ुशी के मौकों पर उसे बुलाना वे कभी न भूलते थे। उसे आप ज़रूर दावत दें। वह आकर नाचेगी। बारात में रौनक़ रहेगी।

मन्ने उनका मुँह ताकता रहा, तो कुछ समझकर वे बोले-वैसी कोई बात नहीं। उर्वशी बहुत अच्छा गाती है। मियाँ को गज़लें सुनने का शौक़ था। आप उसका नाम लिखवाइये।

मन्ने के कई साथी आ गये और उन्होंने काम बाँटकर अपने-अपने हाथ में ले लिये। सब इन्तजाम बाक़ायदा हो गया। और एक दिन दो छोटी-छोटी बारातें आ पहुँचीं। शाम को एक-एक कर दोनों लड़कियों के निकाह हुए। रात को दस्तरख़ान बिछे। उर्वशी का मन मोहनेवाला नाच तम्बू में हुआ। दूर खड़े-खड़े और मन-ही-मन पेंच-ताव खाते हुए जुब्ली और उसकी बिरादरी के लोग तमाशा देखते रहे और यहाँ सब काम ऐसी ख़ूबसूरती से निबट गये कि सबके मुँह पर वाह-वाह!

आनन-फ़ानन में शादियाँ हो गयीं। लड़कियाँ अपने-अपने घर चली गयीं। मन्ने चकित था कि जिस काम को वह इतना भारी समझता था, कैसे चट-पट पूरा हो गया!

बाबू साहब ने कहा-आदमी में हौसला होना चाहिए। दुनियाँ में कोई काम मुश्किल नहीं होता। एक लडक़ी और रह गयी है, लेकिन उसके लिए अभी वक़्त है, इत्मीनान से उसकी शादी की जायगी।

मन्ने की हिम्मत खुल गयी। अब किसी बात से वह परेशान नहीं होता। उसके अन्दर यह विश्वास जड़ जमा चुका है कि कोई ऐसी समस्या नहीं जो हल न हो सके। बाबू साहब सदा उसकी आँखों के सामने रहते हैं और वह सोचता है कि दुनियाँ में ऐसे भी

इन्सान हैं, जिन्हें यादकर आदमी को साहस और शक्ति मिलती है, विश्वास और प्रेरणा मिलती है, सुख और राहत मिलती है।

रेस्तराँ ख़ाली हो चुका था। एक ओर की मेज़ पर मैनेजर खाना खा रहा था। उसने उसे देखते ही बड़े सम्मान के साथ अपनी ही मेज़ पर बुला लिया और उसके लिए नौकर को खाना लगाने का आदेश दिया।

यह मैनेजर भी एक ही आदमी है। मनुष्यता में इसका ऐसा अटूट विश्वास है कि कभी किसी लडक़े से पैसों के लिए तक़ाज़ा नहीं करता। क्रान्तिकारियों और विद्यार्थियों के बड़े-बड़े क़िस्से इसके पास हैं। जब भी मौक़ा मिलता है, सुनाने लगता है-एक थे मनोहर साहब! तीन महीने तक उनका रुपया ही नहीं आया। मुझसे उधार लेकर वे फ़ीस देते थे। खाना तो हमारे यहाँ खाते ही थे। इम्तिहान खत्म हुआ, तो बिना किसी इत्तिला के चलते बने। लडक़ों ने कहा, खा-पीकर, ले-देकर रफूचक्कर हो गये। लेकिन, साहब, मुझे विश्वास था, वे मेरी नेकी नहीं भूलेंगे और भूल ही जायँगे तो मुझे दु:ख न होगा, क्योंकि मैंने एक अच्छा काम ही किया था। और जानते हैं, साहब, फिर क्या हुआ? ...पूरे सात साल बाद उनका एक बीमा मेरे पास पहुँचा, चार सौ रुपये का। उसमें एक ख़त भी था। उन्होंने लिखा था...

प्रेमी उसके ये किस्से बड़े चाव से सुनता था, गोकि कुछ लडक़ों का कहना यह था कि मैनेजर ये क़िस्से गढ़-गढक़र इसलिए सुनाता है कि लडक़ों में नैतिकता जगी रहे और कोई उसका पैसा न मारे।

प्रेमी ने बैठते ही कहा-सुनाइए, मैनेजर साहब, क्या हालचाल हैं?

मैनेजर बोला-क्या सुनाऊँ, प्रेमी साहब,...मुझे बहुत दुख होता है। जब प्रोफ़ेसर ही ऐसे हो गये हैं तो देश का...

-छोड़िए, मैनेजर साहब, ऐसी बातें बार-बार कहने-सुनने की नहीं होतीं। अच्छे-बुरे कहाँ नहीं होते? मैं तो कहता हूँ कि दस प्रोफ़ेसर नहीं, एक आप...

-आप यह क्या कहते हैं?-चकित होकर मैनेजर बोला।

-मेरा यह ख़याल है कि यहाँ लडक़े आपके संसर्ग में आकर जो सीखते हैं, वह प्रोफ़ेसरों से नहीं! प्रोफ़ेसरों को हम भूल जाएँगे, लेकिन आपको नहीं। आप जैसे इन्सानों को ही देखकर लडक़े इन्सान बनते है...

-आपको आज यह क्या सूझी है, प्रेमी साहब?- मैनेजर जैसे बौखलाकर बोला-मैं इस छोटे रेस्तराँ का मालिक...

-इससे क्या होता है? किसको यह मालूम नहीं कि आप फ़र्स्ट क्लास एम०ए० और एल-एल०बी० हैं। आप राजनीतिक कारणों से तीन बार जेल जा चुके हैं। यहाँ लडक़ों के बीच जो आप रेस्तराँ खोलकर बैठे हैं, इसका उद्देश्य...

मैनेजर हो-होकर जोर से हँस पड़ा।

-आप तो, प्रेमी साहब, मज़ाक करते है! लीजिए, आपका खाना लग गया। शुरू कीजिए।-कहकर मैनेजर फिर हँस पड़ा-प्रतियोगिता में आपको सुनने मैं ज़रूर आऊँगा। आपसे मुझे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। आप एक बड़े साहित्यकार हो सकते हैं...

-बस-बस, मैनेजर साहब! थोड़ी चटनी मँगवाइऐ। आपकी बात हज़म करने के लिए...

दोनों ज़ोर से हँस पड़े।

मैनेजर बोला-आज हमारे देश को आप जैसे आदमियों की ही ज़रूरत है। साम्प्रदायिकता के ज़हर को अगर हमने दूर न किया तो हमारी आज़ादी की लड़ाई मज़हबों की लड़ाई में डूब जायगी और...प्रेमी साहब, कल एक मेरा बहुत ही पुराना साथी आ रहा है। वह एक मशहूर क्रान्तिकारी है। मेरी बड़ी इच्छा थी कि आप उससे मिलते।

-ज़रूर-ज़रूर, मैनेजर साहब! उनसे मिलकर मुझे बेहद ख़ुशी होगी!

-लेकिन यह बात किसी को मालूम न हो। आप तो जानते ही हैं...

-मैं कुछ भी नहीं जानता, मैनेजर साहब, मैं इस मामले में बिलकुल ही कोरा हूँ। मेरा एक लडक़पन का साथी है, उसे इन बातों में बड़ी दिलचस्पी है। उसने कभी-कभी वैसा कुछ साहित्य मुझे भी पढऩे को दिया है। मुझे वह साहित्य बहुत अच्छा लगता है, पढक़र जाने कैसा एक जोश रग-रग में लहरें लेने लगता है और फिर मुझे डर लगने लगता है। ...मैनेजर साहब, मेरी घरेलू स्थिति बड़ी ख़राब है। घर का मैं अकेला आदमी हूँ। यह तो हमारे एक बाबू साहब हैं, जिनकी कृपा से मैं पढ़ रहा हूँ, वर्ना मेरे लिए तो घर छोडऩा भी असम्भव था।

-आपके वे साथी कहाँ हैं?-उत्सुकता से मैनेजर ने पूछा।

-वह मद्रास चला गया है। वह बहुत ही ग़रीब घर का लडक़ा है, लेकिन उसे मालूम न था कि वह ग़रीब है। वह सोचता था कि पिताजी के पास इतना पैसा है कि उसकी पढ़ाई चलती रहेगी। लेकिन हाई स्कूल पास करने के बाद उसने आगे पढऩे के लिए कहा, तो उसके पिताजी ने सब स्थिति खोलकर उसके सामने रख दी और कहा, बेटा, यह तुम इतना कैसे पढ़ गये, हम तुम्हारा ख़र्चा कैसे जुटा सके, यही आश्चर्य की बात है। अब हमारी स्थिति ऐसी नहीं कि तुम्हारी आगे की पढ़ाई का इन्तज़ाम कर सकें। अब तुम कुछ करो-धरो। कोई नौकरी कर लो और हमारी कुछ मदद करो। ...वह मेरे पास आकर रोने लगा। उसके सब सपने चूर-चूर हो गये थे। वह पढऩे में बहुत तेज़ था। उसकी कितनी ही कविताएँ, कहानियाँ और लेख पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके थे। लेकिन मैं क्या कर सकता था। इस वाक़या के एक साल पहले मेरे वालिद का इन्तक़ाल हो गया था और उनके जाने के बाद मुझे मालूम हुआ था कि मेरी स्थिति भी कुछ बेहतर नहीं। मेरे जी में बहुत आया कि मैं उसकी कुछ मदद करूँ, लेकिन मैं मजबूर था। मैं उसके आँसू न पोंछ सका और वह आज मद्रास में कोई मामूली नौकरी कर रहा है। उसकी रचनाएँ कभी-कभी पत्र-पत्रिकाओं में दिखाई पड़ जाती हैं। जब भी मुझे उसकी याद आती है, मुझे अपनी पढ़ाई एक गुनाह लगती है। मैं सोचता हूँ, मैंने उसकी मदद क्यों न की? आख़िर मैं कैसे पढ़ रहा हूँ। अगर मैं सचमुच चाहता, उसे सहारा देता, तो क्या मेरे साथ-साथ वह भी न पढ़ लेता? यहाँ हम ट्यूशन कर सकते थे। ...लेकिन मुझमें शायद साहस न था, या मुझे या उसे कोई अनुभव न था कि इस तरह भी पढ़ाई हो सकती है। कालेज की पढ़ाई का मतलब हमारे लिए बनारस इलाहाबाद की ख़र्चीली पढ़ाई थी। वह तो यहाँ आने के बाद मालूम हुआ कि कितने ही ग़रीब लडक़े यहाँ बिना घर की मदद पाये, ट्यूशनें और पार्ट टाइम काम करके भी पढ़ लेते हैं। ...वह पढ़ सकता था, मैनेजर साहब, लेकिन मैं क्या बताऊँ? मुझे लगता है कि यह मेरी ही ग़लती है, जो वह न पढ़ सका। वह बड़ा ही स्वाभिमानी और संकोची जीव है। एक बार भी मुँह खोलकर उसने मुझसे कुछ नहीं कहा, किसी की मदद लेना उसके स्वभाव के विरुद्ध है, कोई उसे ग़रीब कहे, यह उसे असह्य था। इसी कारण मैंने कुछ भी नहीं कहा। लेकिन मुझे लगता है कि मैं बहुत स्वार्थी हूँ, सच्चा दोस्त नहीं। मुझे कुछ करना चाहिए था। मुझे ताज़िन्दगी इसका अफ़सोस रहेगा। उसकी प्रतिभा...

-हमारे यहाँ अधिकतर प्रतिभाओं की यही दशा है, प्रेमी साहब!-मैनेजर बोला-यहाँ जैसे हर बीज पत्थर के नीचे दबा है। दबकर उसका सड़-गल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं, आश्चर्य तो इसका है कि कैसे कोई बीज पत्थर तोडक़र एक विशाल वृक्ष बन जाता है। कौन जाने, आपके मित्र...

-मैं उससे निराश नहीं हूँ, मैनेजर साहब। वह एक दिन ज़रूर चमकेगा! लेकिन ताज़िन्दगी अफ़सोस मुझे इस बात का रहेगा कि जिसने मुझे इन्सानियत का पहला सबक़ सिखाया, मैं उसकी कोई मदद न कर सका, शायद मैं कर सकता था।

-कहते-कहते, उसकी आँखे भर आयीं।

मैनेजर कई क्षण तक ख़ामोश उसकी ओर देखता रहा। कालेज की घड़ी ने ग्यारह बजाये, टन, टन...

-अरे, आपकी थाली तो अभी योंही पड़ी है! खाइए, प्रेमी साहब!-मैनेजर जैसे परेशान होता हुआ बोला।

-अब खाया न जायगा, मैनेजर साहब,-प्रेमी ने एक ठण्डी साँस ली और उठ खड़ा हुआ।

वह अपने कमरे में आकर बिस्तर पर पड़ गया। उसका मन ख़ूब रोने को हो रहा था। मुन्नी की याद बहुत आ रही थी। हाई स्कूल पास करने के बाद जब उसकी पढ़ाई रुक गयी, वह बेकार हो गया, तो कितना दुखी था। घर में मामूली काम-धाम था, जिसे उसके पिता और बड़े भाई करते थे। मँझले भाई बेकार ही थे। यहाँ उसके लिए कोई काम न था। पिता बार-बार कहते थे, वह कोई नौकरी ढूँढ़ ले। बेकार रहकर कब तक भार बना रहेगा? अचानक ऐसी परिस्थिति के चक्कर में पडक़र जैसे उसके होशो-हवास ही गुम हो गये थे। वह बिलकुल चुप और उदास हो गया था। अख़बार में 'वाण्टेड' देखकर वह अजिऱ्याँ देता और इन्तज़ार करता, लेकिन कहीं से कोई जवाब न आता और वह और चुप और उदास और निराश हो जाता। हाई स्कूल उसने प्रथम श्रेणी में पास किया था, लेकिन उसकी कहीं पूछ नहीं थी। एक साल ऐसे ही बीत गया, तो 'वाण्टेड' पर से उसका विश्वास ही उठ गया, उसने अजिऱ्याँ देना भी बन्द कर दिया। मन्ने उसकी यह हालत देखता और मन-ही-मन रोता। वह बार-बार सोचता कि क्या वह उसके लिए कुछ नहीं कर सकता? उसके कई रिश्तेदार रेलवे में नौकर थे। चुपके-चुपके वह उनके यहाँ गया था, उनसे मुन्नी के लिए कोशिश करने को कहा था, लेकिन उसका भी कोई नतीजा न निकला था। दरअसल उन्होंने उस हिन्दू लडक़े में कोई दिलचस्पी न ली। उनका कहना था कि हज़ार-पाँच सौ वह ख़र्च करे, तो शायद कुछ बन जाय। उनका ख़याल था कि भले मुन्नी के घरवालों के पास पैसा न हो, मन्ने के पास है और वह अपने दोस्त के लिए ख़र्च कर सकता है। उन्हें क्या मालूम कि मन्ने की स्थिति क्या है।

और इसके बाद बहनों की शादी का झमेला खड़ा हो गया और मन्ने कुछ दिनों के लिए मुन्नी को बिलकुल ही भूल गया। इन झंझटों से पार हुआ तो जुलाई आ गया। बाबू साहब उसे कॉलेज भेजने की तैयारी करने लगे, लेकिन वह ख़ुद ही हैरान था कि कैसे क्या होगा। शादियों में वह तीन-चार हज़ार का ऋणी हो गया था। बाबू साहब ने कहाँ से इस ऋण का प्रबन्ध किया था, उसे नहीं मालूम, लेकिन उसे मालूम था कि यह ऋण उसे ही भरना है। उसने यह बात बाबू साहब से कही तो उन्होंने कहा-आप इसकी चिन्ता न करें, सब हो जायगा। आपकी ज़मीन-ज़मींदारी की ही आमदनी से धीरे-धीरे यह क़र्जा पट जायगा। अब बस आपकी पढ़ाई का ही ख़र्चा रह गया है, घर में तो कोई ख़र्च है नहीं, बुआ और एक बहन के खाने-पीने से कहीं अधिक तो घर की खेती से आ जाता है। जो हो, अभी आपका काम यह-सब देखना नहीं है, आप अपना ध्यान बस पढ़ाई में लगाइए।

मन्ने के मन में आया कि वह बाबू साहब से मुन्नी के बारे में कोई बात करे, लेकिन वह कर न सका। एकाध बार उसके मन में उठी कि क्यों न कुछ खेत बेच दे, लेकिन यह बात सोचना भी जैसे उसे अपराध लगा। सारे गाँव में किरकिरी हो जायगी। मन्ने की हालत ख़राब है, वह खेत बेंच रहा है! सारी साख हवा हो जायगी। हर तरफ़ से उसकी ओर उँगली उठेगी।

नहीं, बाबू साहब उसका यह प्रस्ताव किसी भी हालत में स्वीकार नहीं करेंगे।

फिर भी उसने मुन्नी से कहा-मेरे साथ इलाहाबाद चलो।

मुन्नी ने सिर झुकाकर उत्तर दिया-मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा?

मन्ने ने कहा-और कुछ नहीं, तो इतना तो है ही कि वह बड़ी जगह है, शायद वहाँ तुम्हें कोई काम मिल जाय।

-ख़र्च के लिए पैसा कहाँ है?-मुन्नी ने पूछा।

-तुम उसकी चिन्ता मत करो, वहाँ मेरे साथ रहना।-सहमते हुए मन्ने ने कहा।

-नहीं, यह कैसे हो सकता है?

-क्यों नहीं हो सकता? मेरे साथ रहने में तुम्हें क्या आपत्ति हो सकती है?

-कहीं भी बेकार क्यों रहा जाय?

इस पर मन्ने क्या कहता? मन्ने के पास अपने पैसे का बल रहता, तो शायद वह कहता, क्या मेरा पैसा तुम्हारा नहीं? तुम चलो और कॉलेज में नाम लिखाओ। लेकिन उसके पास पैसा था कहाँ? फिर भी उसने कहा-मैं चाहता हूँ कि जब तक तुम्हें कोई काम न मिले, तुम मेरे साथ रहो।-मन्ने के मन में कहीं कुछ कचोट रहा था, वह इसी कचोट के कारण अधिक नहीं तो कुछ भी करना चाहता था। मित्र के प्रति अपने कत्र्तव्य का पालन वह न कर पा रहा था, उसके लिए जिस त्याग की आवश्यकता थी, उसे पूरा करना उसके बस की बात न थी। फिर भी इस कत्र्तव्य का ज्ञान उसे था और वह इस ज्ञान को, जैसे भी हो, बहलाना चाहता था। वह सोचता था, शायद आगे कोई रास्ता निकल आये।

मुन्नी ने कहा-यों तुम्हारे साथ रहने में मुझे ख़ुशी ही होती। लेकिन मैं सोचता हूँ कि अब हमारा साथ-साथ रहना नहीं हो सकता। मेरा रास्ता अलग है, तुम्हारा अलग। ये रास्ते शायद अब कभी भी एक-दूसरे से न मिलें!-उसका गला भर आया-शायद इतने दिनों तक ही हमारा साथ था। ऐसा हम कब सोचते थे, लेकिन यह ज़िन्दगी बड़ी कठोर है, किसको कहाँ ले जाकर फेंक देगी, कौन जाने!

मन्ने की आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। भावावेश में वह बोला-नहीं, यही सोचकर हम एक साथ रहने की कोशिश तो नहीं छोड़ देंगे! तुम मेरी एक बात, सिर्फ़ एक बात मान लो, तुमने कभी भी मेरी कोई बात नहीं टाली, आज सिर्फ़ एक बात मेरी मान लो, तुम मेरे साथ इलाहाबाद चलो!

-उसके बाद?-मुन्नी ने जैसे कठोर होकर कहा-जो परिस्थिति मेरे सामने दिखाई देती है, उससे मैं आँखें कैसे मूँद लूँ?

-आगे जो होगा, देखा जायगा। इस समय तो मैं सिर्फ़ एक बात के लिए तुमसे कह रहा हूँ!-मन्ने उसी आवेग में बोल रहा था।

-तुम्हारे पास पैसा है, शायद तुम परिस्थति पर क़ाबू पा सकते हो, लेकिन मैं...-मुन्नी मन्ने का उड़ता रंग देखकर अचानक चुप हो गया।

मन्ने के दिल पर जैसे कोई भारी चोट लगी। उसने आज तक मुन्नी से यह न बताया था कि उसकी आर्थिक स्थिति कैसी है। उसके जी में आया कि अभी वह सब-कुछ बता दे, लेकिन फिर कुछ सोचकर वह इस विषय में चुप ही रहा। लोगों की तरह मुन्नी का भी ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है। मुन्नी का यह ख़याल वह क्यों तोड़े? उसे अपना ही क्या कम दुख है, जो वह अपना भी उसके में जोड़ दे। उसे कम-से-कम अपनी ओर से

तो आश्वस्त रहने दे कि उसे कोई तकलीफ़ नहीं, उसके पास पैसा है। ...एक पीड़ा उसके मन में हँस उठी। फिर भी वह बोला-अगर मेरे पास पैसा है, तो उसे तुम अपना ही समझो। जो हो, तुम इलाहाबाद मेरे साथ चलो!-मन्ने को अब जैसे ज़िद हो गयी। वह अन्धा हो चुका था।

मुन्नी ने कोई छुटकारा न देखा, तो उसका मन रखने के लिए कह दिया-मैं कोशिश करूँगा।

मुन्नी ने अपनी माँ से इलाहाबाद जाने की बात कही। बाप से कहने की उसमें हिम्मत न थी। माई ने कैसे उसके लिए पच्चीस रुपये का इन्तज़ाम कर दिया, उसे नहीं मालूम।

कॉलेज की शानदार इमारत, सैकड़ों लडक़ों की भीड़...खुशी में दमकते उनके चेहरे...और जाने मुन्नी को क्या हुआ कि उसने मन्ने का साथ छोड़ दिया। वह जाने कहाँ-कहाँ बिना जाने-समझे दिन-भर शहर में मँडराता रहा। शाम को थका दिल-दिमाग़ लिये वह लौटा, तो मन्ने को फाटक पर ही इन्तज़ार में खड़ा पाया।

देखते ही मन्ने बोला-तुम कहाँ चले गये थे?

मुन्नी ने अपना सवाल किया-सब हो गया?

-हाँ, हास्टल में कमरा भी मिल गया।

-तो कमरे में ही चलो।

कमरे में चार चारपाइयाँ पड़ी थीं। प्रश्न की दृष्टि से मुन्नी ने मन्ने की ओर देखा, तो वह बोला-फ़स्ट इयरवालों को इसी हास्टल में जगह मिलती है, यह फोर सीटेड कमरा है। पता नहीं और तीन कौन होंगे। ...हाँ, यह तो बताओ, दिन में तुमने खाना...

-मैं तो इस वक़्त भी खाना खाकर आया हूँ,-मुन्नी ने कहा।

-ऐसा तुमने क्यों किया? मैं तो तुम्हें खोजता रहा...

-देखो, तुम मुझसे इस तरह का कोई सवाल न पूछोगे! मैं तुम्हारा कोई मेहमान नहीं हूँ!-मुन्नी ने कठोरता से कहा।

मन्ने अवाक्, जरा देर बाद बोला-ऐसा तुम क्यों कहते हो?

-मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूँ। मेरे चक्कर में तुम बिलकुल न रहो। मैं कोई बच्चा नहीं हूँ। तुम अपना काम देखो।-उसी लहजे में मुन्नी बोला।

-यह क्या हुआ है तुम्हें?-चकित मन्ने ने पूछा।

-कुछ नहीं हुआ है,-जो मुन्नी के मन पर आज गुज़री थी, वह कोई बताने की चीज़ न थी। फिर सहसा वह सम्हल गया। यह क्या कर रहा है वह? बोला-अगर तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे साथ रहूँ, तो जैसे मैं चाहूँ रहने दो।

मुन्नी को यह अचानक क्या हो गया, मन्ने के लिए समझना मुश्किल था। इस तरह का व्यवहार तो उसने कभी भी न किया था। मन्ने का मुँह लटक गया। वह ख़ामोश हो गया।

मुन्नी निखहरे पलंग पर लेट गया। मन्ने सिर झुकाये बैठा रहा। ख़ामोशी छायी रही।

एक महीने तक यह ख़ामोशी न टूटी। मुन्नी की हालत देखने लायक़ हो गयी थी। दाढ़ी बढ़ी हुई, मुँह लटका हुआ आँखों में उदासी, चिन्ता और निराशा। वह कोई बात न करता। जाने दिन-भर कहाँ रहता। शाम को वापस आता तो एक-न-एक किताब साथ लाता और रात में देर-देर तक पढ़ता रहता और फक-फक बीड़ी खींचता। मन्ने का मन कटता रहता। उसकी हालत देखकर वह अन्दर-ही-अन्दर रोता, लेकिन कुछ कहने की, पूछने की उसकी हिम्मत न होती। शाम को वह उसका इन्तज़ार करता रहता, आता तो कहता, चलो खाना खा लो।

मुन्नी कहता-मैं खाना खाकर आया हूँ।

और फिर ख़ामोशी छा जाती।

मुन्नी सुबह नहा-धोकर जाने लगता, तो मन्ने नाश्ते के लिए पूछता। मुन्नी उसकी ओर एक क्षण के लिये देखता और कहता-नाश्ता मैं नहीं करता-फिर अपने हाथ की किताब उसकी ओर बढ़ाकर कहता-यह किताब पढ़ोगे?

मन्ने किताब ले लेता और मुन्नी चला जाता।

वे किताबें एंगिल्स, माक्र्स, लेनिन या स्तालिन की हुआ करतीं। एक दिन उसने देखा, तो एक किताब पर 'यूथ लीग स्टडी सर्किल' की मुहर लगी थी। उसकी बड़ी इच्छा हुई कि वह वहाँ जाय और देखे कि वह कैसी संस्था है, जहाँ मुन्नी जाता है और जहाँ से ऐसी-ऐसी किताबें लाता है।

लेकिन उसी दिन शाम को जब मुन्नी लौटा, तो बोला-मैं कल जा रहा हूँ।

-कहाँ?-मन्ने ने चकित होकर पूछा।

-मद्रास।

-क्यों? क्या बात है, मुझे बताओ, इतनी दूर...

-वहाँ एक नौकरी मिल गयी है।

-कैसी नौकरी!

-'समाज सेवा आश्रम' नामक वहाँ कोई संस्था है, हिन्दी पढ़ाने का काम है। वेतन मिलेगा तीस रुपया।

-तीस रुपया और मद्रास?

-नौकरी नहीं है, कहते हैं, सेवा है, समाज की सेवा, राष्ट्रभाषा की सेवा!-और मुन्नी ज़ोर से ठहाका लगाकर हँस पड़ा।

बहुत दिनों के बाद वह हँसा था। मन्ने को ऐसा लगा, जैसे कोई बुत अचानक हँस पड़ा हो। वह उसकी ओर आश्चर्य से देखता रहा।

-इस तरह क्या देखते हो? मैं आज ख़ुश हूँ। चलो, आज साथ-साथ खाना खाएँगे। कहते हैं, ऐसा सेवा-कार्य, जिसमें उदर-पोषण की भी व्यवस्था हो, किसी को सौभाग्य ही से मिलता है!-और वह फिर हँस पड़ा।

लेकिन खाना उन दोनों में से किसी से भी न खाया गया। उठकर कमरे में चले आये।

मन्ने ने कहा-तो कल ही चले जाओगे?

-हाँ, टिकट और राह-ख़र्च मिल गया है।

-माँ-बाप से मिलने घर नहीं जाओगे? इतनी दूर जा रहे हो...

मन्ने सोचता था, माँ-बाप इस मामूली नौकरी पर उसे इतनी दूर न जाने देंगे।

-नहीं, अब तो सीधे मद्रास जाना है।

-सुनेंगे तो वे क्या सोचेंगे?

-कुछ नहीं सोचेंगे। बल्कि ख़ुश ही होंगे, कुछ तो काम कर रहा हूँ!

-नहीं, तुम मिलकर जाओ, जाने फिर कब आना हो।

मुन्नी को भी इसका ख़याल था, लेकिन उसे डर भी था कि कहीं वे उसे रोक न लें और अब वह रुकनेवाला न था। बोला-इन बातों में क्या रखा है? ...पिछले कुछ महीनों के अनुभवों ने मुझे ऐसी कठोर धरती पर ला पटका था कि हर चीज़ से मेरी आस्था ही उठी जा रही थी। दोस्त, माँ-बाप, भाई-बहन...संसार, संसार के रिश्ते, जीवन, जीवन के आदर्श...जैसे सब-कुछ थोथे हों, कहीं कुछ न हो। एक मैं अकेला था, जंगल के अन्धकार में घिरे हुए एक मुसाफ़िर की तरह, जिसे कोई रास्ता न मिल रहा हो। चीख़ना बेकार था, क्योंकि कोई सुननेवाला न था। आँखों के सामने छाया हुआ अन्धकार, लगता था, जैसे अब मुझे लीलकर ही दम लेगा! ...ओह, बेकारी कितना बड़ा अभिशाप है! यह इन्सान को मुर्दा बना देता है! ...यह अच्छा हुआ कि मैं तुम्हारे कारण यहाँ आ गया। उस संयोग को भी मैं कभी न भूलूँगा, जिससे यूथ लीग से मेरा सम्पर्क हुआ। उसका मन्त्री बहुत ही अच्छा आदमी है। वह मुझे पढ़ने को किताबें देता था, मुझसे बातें करता था। किताबें पढ़ने और उसकी बातों से ही अपनी परिस्थिति का ज्ञान मुझे हुआ, मुझे मालूम हुआ कि यह जंगल क्या है, यह अन्धकार क्या है, और मैं क्यों यहाँ घिर गया हूँ। मुझे मालूम हुआ कि यह जंगल बहुत बड़ा है, यह अन्धकार चारों ओर फैला हुआ है और यहाँ लाखों-करोड़ों लोग मेरी ही तरह घिरे हुए हैं। इन लाखों-करोड़ों को, जो अलग-अलग घिरे हुए हैं और जो यह समझे हुए हैं कि वे अकेले ही हैं, अगर यह अहसास हो जाय कि वे लाखों-करोड़ों हैं, जिनकी स्थिति एक है, जिनका मार्ग, मुक्ति-मार्ग एक है, लक्ष्य एक है और वे अपना हाथ बढ़ाकर एक-दूसरे का हाथ थाम लें और आगे बढ़ें तो यह जंगल साफ़ हो सकता है, यह अन्धकार दूर हो सकता है, यह परिस्थिति बदली जा सकती है...अपने ही जैसे लाखों-करोड़ों का अहसास...तुम समझ सकते हो, यह कितनी बड़ी शक्ति है...जैसे अकेले अपने में ही करोड़ों की शक्ति का अहसास...यह एक ऐसी किरण है, जिससे सूरज की आँखें भी चौंधिया जायँ! ...उसी मन्त्री ने मेरी इस नौकरी की व्यवस्था की है। सुनकर मुझे हँसी आये बिना न रही। सोचकर मुझे अब भी हँसी आती है। लेकिन उसने कहा, यह तो एक आवश्यक आधार है, जनता और काम कहाँ नहीं हैं। तुम जाओ! सेवा-कार्य और उदर-पोषण हमारी व्याख्या नहीं है, वह तो उनकी है, जिन्होंने आदमी माँगा है और जो चाहते हैं कि इस सुनहरी व्याख्या से आदमियों के दिलों में लगी हुई आग बुझ जाय। फिर भी उसका उपयोग तो हम अपने ही क्षेत्र की तरह करेंगे।

गाड़ी के समय से कुछ पहले ही वे स्टेशन पहुँच गये। थोड़ी देर तक वे ख़ामोश प्लेटफ़ार्म के शोर में टहलते रहे। फिर अचानक मुन्नी को जाने क्या हुआ कि वह बोला-मैं घर होकर ही जाऊँगा। चलो, टिकट बदल लें।

मन्ने की समझ में मुन्नी की बहुत-सी बातें आज न आ रही थीं। एक ऐसी ही बात यह भी थी। मन्ने के दिल-दिमाग़ में तो आज एक ही बात गूँज रही थी, मुन्नी जा रहा है, दूर, बहुत दूर! जाने फिर कब मिले, मिले, न मिले...वह अपनी बातें ही लिये हुए गोता लगा रहा था, मुन्नी की बातें उसकी समझ में कैसे आतीं!

लेकिन उसने उसकी यह बात सुनी तो जैसे उसका सिर धारा से ऊपर आ गया। एक आशा की कौंध से उसकी आँखें चमक उठीं। बोला-मैंने तो कितनी बार कहा...

-क्या करें, मन नहीं मानता। यह मन...और वह चुप हो गया, जैसे आगे की बात कहने के लिए भाषा में शब्द ही न हों और उसने बढक़र बेंच पर से अपना तह किया हुआ दरी-तकिया उठा लिया।

घर से उसका एक संक्षिप्त पत्र आया। उसकी एक-एक बात मन्ने को आज भी याद है :

...सुनकर बाबूजी ने आँख न मिलायी।

कल चला जाऊँगा।

आज शाम को बाबूजी फूट पड़े-यह तो वही हुआ न, जैसे दशरथजी ने राम को बन भेज दिया! ...

माई की मैं क्या लिखूँ...

सती मैया का चौरा भाग 2 - Satee Maiya Ka Chaura Part 2

1. सती मैया का चौरा भाग 1
2. सती मैया का चौरा भाग 2
3. सती मैया का चौरा भाग 3
4. सती मैया का चौरा भाग 4
5. सती मैया का चौरा भाग 5
6. सती मैया का चौरा भाग 6
7. सती मैया का चौरा भाग 7
8. सती मैया का चौरा भाग 8
9. सती मैया का चौरा भाग 9
10. सती मैया का चौरा भाग 10
11. सती मैया का चौरा भाग 11